वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 432
ISBN-978-93-84003-24-1

जिनागम नवनीत

(भाग–1)

[प्रतिष्ठापाठ, तिलोयपण्णत्ति, षट्खण्डागम,
कसायपाहुड़ आदि 40 ग्रंथों से संकलित]

–संकलनकर्त्री –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

परमपूज्य, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा श्रावण कृ. एकम् को घोषित 'श्री गौतम गणधर वर्ष' वीर निर्वाण संवत् 2540-41 (सन् 2014-2015) वर्ष के अन्तर्गत चारित्रश्रमणी पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी की द्वितीय पुण्यतिथि-भाद्र कृष्णा सप्तमी (16 अगस्त 2014) के शुभ अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2540	मूल्य
1100 प्रतियाँ	भाद्रपद कृ. सप्तमी	32/-रु.
	16 अगस्त 2014	

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

नमः ऋषभदेवाय धर्मतीर्थप्रवर्तिने।
सर्वा विद्या-कला-यस्मादाविर्भूता महीतले।।

"स्वाध्यायः परमं तपः" आचार्यों ने स्वाध्याय को परम तप कहा है। श्रावक के छह आवश्यक में स्वाध्याय एक आवश्यक कर्तव्य है। ध्यान और अध्ययन साधु के आवश्यक कर्तव्य हैं। स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है। सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। कर्मों का क्षय होता है। पुण्य का आस्रव और कर्मों की निर्जरा होती है। चिन्तामणि रत्न के समान ग्रंथ का स्वाध्याय इच्छित फल को प्रदान करता है। ज्ञान से बढ़कर कोई वस्तु संसार में नहीं है। यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य में लिखा है—

ज्ञानं पूज्यं तपोहीनं, ज्ञानहीनं तपोऽर्हितम्।
यत्र द्वयं स देवः स्याद्, द्वि हीनो गणपूरणः।।

अर्थात् जिसके तप न हो और मात्र विशिष्ट ज्ञान ही हो तो वह भी पूज्य है। जिसके (विशिष्ट) ज्ञान न हो, केवल तप या चारित्र ही हो, तो वह भी पूज्य है और जिस व्यक्ति में (विशिष्ट) ज्ञान व तप दोनों हो, उसे तो साक्षात् देव ही समझना चाहिए।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी राष्ट्रगौरव, युगप्रवर्तिका, श्रुतप्रकाशिका, तीर्थोद्धारिका, दो बार डी. लिट् . की मानद उपाधि से अलंकृत, न्याय प्रभाकर, आगमनिष्ठ, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, सिद्धान्तचक्रेश्वरी परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने स्वाध्याय के द्वारा चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान अर्जित करके बाल, युवा, वृद्ध, विद्वान सभी की योग्यतानुसार बालविकास से लेकर अष्टसहस्री, नियमसार, समयसार, षट्खण्डागम जैसे ग्रंथों का लेखन, सृजन किया है। भगवान महावीर के शासन में पूज्य माताजी सर्वप्रथम आर्यिका हैं, जिन्होंने इतने विपुल साहित्य का निर्माण किया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'जिनागम नवनीत' प्राचीन पूर्वाचार्यों के ग्रंथों से संग्रहीत अनेक महत्वपूर्ण विषयों को लिए हुए है। इस छोटे से–गागर में सागर के समान ग्रंथ का स्वाध्याय सभी के ज्ञान को बढ़ाने वाला होवे, यही मंगल भावना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला इसी तरह से सत्साहित्य का, महान ग्रंथों का प्रकाशन कर, जिनधर्म की प्रभावना में अग्रसर हो। मुझे भी एकदिन पूर्ण श्रुतज्ञान की प्राप्ति हो यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और आगे भी अपने ज्ञानरूपी आलोक से सभी भव्यजीवों को प्रकाशित करती रहें, यही मंगल कामना है।

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

श्री अमितगति सूरि ने स्वाध्याय का माहात्म्य बताते हुए लिखा है–

निरस्त सर्वाक्षकषायवृत्तिर्विधीयते येन शरीरिवर्गः।
प्ररूढजन्मांकुरशोषपूषा स्वाध्यायतोऽन्योस्ति ततो न योगः।।
गुणाः पवित्राः शमसंयमाढ्या विबोधहीनाः क्षणतश्चलन्ति।
कालं कियन्तं तलपुष्पपूर्णास्तिष्ठन्ति वृक्षाः क्षतमूलबंधाः।।

अर्थात् जिस स्वाध्याय के द्वारा प्राणीवर्ग की समस्त इन्द्रियों और कषायों को प्रवृत्ति से रहित किया जाता है और जो बढ़ते हुए भवांकुर के सुखाने के लिए सूर्य सदृश है, ऐसे स्वाध्याय से बढ़कर अन्य कोई योग–ध्यान नहीं है अर्थात् स्वाध्याय करते समय पाँचों इन्द्रियों का अशुभ व्यापार छूट जाता है और कषायों की प्रवृत्ति भी नहीं दिखती है, मन केवल अर्थ के चिन्तन में शांत रहता है तथा संसार की परम्परा घट जाती है। आज के युग में इस स्वाध्याय के अतिरिक्त और ध्यान क्या किया जा सकता है ? अर्थात् ध्यान से भी अधिक स्वाध्याय में मन स्थिर हो जाता है।

कषायों की मंदतारूप प्रशमभाव और संयम आदि जितने भी पवित्र गुण हैं वे सब यदि ज्ञान से रहित हैं तो क्षणमात्र में चलायमान हो जाते हैं। जिन वृक्षों का मूल जड़–बंधन विनष्ट हो गया है, ऐसे पत्र, पुष्पों से परिपूर्ण भी वृक्ष कितने समय तक खड़े रह सकते हैं ? अर्थात् जैसे जड़ के उखड़ जाने से हरे– भरे वृक्ष भी गिर जाते हैं वैसे ही ज्ञान के बिना शम–संयम आदि गुण अधिक काल नहीं टिक पाते हैं, इसलिए सतत ही जैन आगम का स्वाध्याय करते रहना चाहिए।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, युगप्रवर्तिका, चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान रखने वाली, चिन्तन साधिका, चारित्र चन्द्रिका परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी नित्य नई–नई कृतियों के निर्माण में संलग्न हैं। आज हमारे पास द्वादशांग के अंशरूप जो शास्त्र हैं उन्हें पढ़ने के लिए भी समय नहीं है, अतः पूज्य माताजी ने प्राचीन शास्त्रों का स्वाध्याय करके, आलोढन करके, उनमें से मक्खनरूप विषयों को लेकर यह **'जिनागम नवनीत'** तैयार किया है।

इस जिनागम नवनीत में ४० ग्रंथों से १०८ विषयों का संकलन है। इसमें सर्वप्रथम णमोकार मंत्र, चत्तारि मंगल पाठ जो कि अनादिसिद्ध मंत्र है, उनकी प्रमाणिकता बताते हुए ॐ, ह्रीं, अर्हं मंत्र की महिमा का वर्णन किया है। 'जिन' अर्थात् जिनेन्द्रदेव का लक्षण

बताते हुए सम्यक्त्व का लक्षण बताया है। एक विशेष बात ध्यान देने की है कि यदि सम्यग्दृष्टि जीव सम्पूर्ण जिनशास्त्र का श्रद्धान करते हुए उसके १ पद या १ अक्षर का श्रद्धान नहीं करता है तो वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है। किन–किन आचार्यों के ग्रंथ प्रमाणीक हैं इसका वर्णन इस ग्रंथ में पूज्य माताजी ने किया है।

श्री कुंदकुंद स्वामी ने विदेह क्षेत्र में विराजमान सीमंधर स्वामी के समवसरण का ध्यान किया, उस समय एक देव ने उन्हें विमान में बिठाकर विदेह क्षेत्र में भगवान के समवसरण में पहुँचा दिया जिसका वर्णन पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ आदि ग्रंथों में आता है, अतः कुन्दकुन्दस्वामी की वाणी, लेखनी साक्षात् जिनेन्द्रदेव की वाणी है, इनके ग्रंथ प्रमाणीक हैं इस बात को ध्यान रखना है।

जिनमंदिरों के निर्माण की परम्परा युग की आदि से चली आ रही है, जैसा कि आदिपुराण ग्रंथ में लिखा है कि युग की आदि में इन्द्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमंदिर बनाये। भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर नाना प्रकार के रत्नमयी जिनमंदिर बनवाए हैं। जयकुमार की पत्नी सुलोचना ने जिनमंदिर व जिनप्रतिमाएं बनवाईं। हरिषेण चक्रवर्ती, श्री रामचन्द्र जी आदि अनेक महानुभावों ने अनेकों जिनमंदिर बनवाए, जिनका वर्णन इसमें उत्तरपुराण, पद्मपुराण आदि से दिया गया है।

१००८ खंभों के जिनमंदिर का वर्णन आराधना कथाकोष में आया है। लंका में रावण के महल में स्वर्ण के १००० खंभों का शांतिनाथ का जिनमंदिर था जिसका दर्शन श्रीरामचंद्र जी ने किया ऐसा पद्मपुराण में आया है। विभीषण के महल में भी १००० स्वर्णमयी खंभों का पद्मप्रभ मन्दिर था। अधर आकाश में विजयदेव के नगर में जिनमंदिर का वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में आया है।

भरत चक्रवर्ती के विवर्धन कुमार आदि ९२३ पुत्र जो कि निगोद से निकलकर इन्द्रगोप हुए और फिर भरत चक्रवर्ती के पुत्र होकर भगवान ऋषभदेव के समवसरण में जाकर सम्बोधन प्राप्त कर, दीक्षा लेकर उसी भव से मोक्ष चले गए, ऐसा वृहद् द्रव्यसंग्रह में वर्णन आया है।

इसमें २४ तीर्थंकरों के प्रथम पारणा के नगर, प्रथम आहारदाता के नाम, केवलज्ञान उत्पत्ति के स्थान आदि का वर्णन है। कौन से तीर्थंकर किस आसन से मोक्ष गए। २४ कामदेव के नाम भी इसमें आए हैं। भीम महामुनि ने भाले के अग्रभाग से दिए जानेरूप वृत्तपरिसंख्यान नियम लिया था जो कि छह माह में पूर्ण हुआ, यह रोमाचंक विषय है।

साधुओं के लिए एक विशेष बात ध्यान देने की है कि आदिपुराण ग्रंथ में श्री जिनसेनाचार्य ने लिखा है कि संक्रांति में जैनेश्वरी दीक्षा का मुहूर्त नहीं है अतः इस दिन

किसी को भी दीक्षा नहीं देना चाहिए। उत्तरपुराण में लिखा है कि द्वारावती में कुबेर ने सर्वप्रथम एक हजार शिखरों वाला जिनमंदिर बनाया, जिसका वर्णन पढ़कर बहुत ही आनन्द आता है।

आज बहुत से साधु, श्रावक आहार में दही या मट्ठे से बनाई गई कढ़ी नहीं लेते हैं वे उसे द्विदल मानते हैं इसके लिए श्री उमास्वामी आचार्य ने उमास्वामी श्रावकाचार में लिखा है कि द्विदल कच्चे दूध और कच्चे दूध के जमाए दही में दो दाल वाले धान्य के मिलाने से बनता है। शुद्ध, गर्म दूध में जमाए दही से बनी कढ़ी में द्विदल नहीं होता है।

इस नवनीत में पंचामृत अभिषेक, चंदन लेपन, पुष्प चढ़ाने के, स्त्रियों के द्वारा जिनाभिषेक के, जनेऊ धारण के एवं शासन देव–देवी के भी प्रमाण दिए हैं।

इसी प्रकार से अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों को लिए हुए यह जिनागम नवनीत अनेक ग्रंथों से निकले मक्खनरूप से है, इसका स्वाध्याय कर सभी अपने ज्ञान की वृद्धि करें। अंत में इस ग्रंथ की प्रशस्ति में पूज्य माताजी ने लिखा है–

यह ग्रंथ सदा ही इस भू पर, सबको ज्ञानामृत देवेगा।
जब तक जग में रवि, शशि, तब तक भव्यों को अमृत देवेगा।।
यह जिन आगम के सारों में, भी सार सौख्यकारी होवे।
यह सर्व अमंगल दोष हरे, कैवल्य 'ज्ञानमति' कर देवे।।

यह ग्रंथ सभी के लिए हितकारी हो, इसे पढ़कर सभी अपना सम्यग्दर्शन दृढ़ करें, यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और अपने ज्ञानरूपी अमृत से हम सभी को सिंचित करती रहें यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

दो शब्द

—आर्यिका सुव्रतमती

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात् , जीयात् श्री शान्तिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात् , जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

भगवान महावीर के शासनकाल में बीसवीं–इक्कीसवीं शताब्दी में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी युगप्रवर्तिका, चारित्र–चन्द्रिका, आर्यिका शिरोमणि परम पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जिनधर्म, जिनागम की विशेष प्रभावना करते हुए विपुल साहित्य का निर्माण किया है। प्रतिक्षण पूज्य माताजी की यह भावना रहती है कि मैं किस तरह से वर्तमान में सभी भव्य जीवों को आगम के ज्ञान से सिंचित करूँ। इसके लिए पूज्य माताजी ने पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित शास्त्रों के आधार से जैनभारती, ज्ञानामृत, आगम दर्पण, जिनागम रहस्य, जिनागम में नवपदार्थ, द्वादशानुप्रेक्षा आदि अनेक ग्रंथों की रचना की है।

प्रस्तुत पुस्तक 'जिनागम नवनीत' में पूज्य माताजी ने पूर्वाचार्यों की वाणी को, नए नए विषयों को संकलित किया है, जिनका सीधा सम्बन्ध भगवान महावीर की वाणी से है। मूलाचार में श्री कुंदकुंददेव ने बहुत सुन्दर बात लिखी है–

जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणबाहिवेयण–खयकरणं सव्वदुक्खाणं।।८४३।।

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के वचन ही महाऔषधि हैं, ये विषय सुख का विरेचन कराने वाले हैं, अमृतरूप है, जरामरणरूपी व्याधि की वेदना और सर्वदुःखों का क्षय करने वाले हैं।

इस जिनागम नवनीत के प्रूफरीडिंग के माध्यम से मुझे नई–नई आगम की बातों का ज्ञान हुआ है। पूज्य माताजी के चरणों में कोटि–कोटि नमन करते हुए मैं यही भावना करती हूँ कि इस ग्रंथ का स्वाध्याय मेरे जीवन में एक दिन श्रुतज्ञान, केवलज्ञान प्राप्त कराने में सहायक हो, पूज्य माताजी का चरण सानिध्य एवं वरदहस्त सदा प्राप्त होता रहे यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

हार्दिक उद्‌गार

—ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

नमः श्री वर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते।।

बीसवीं शताब्दी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले युगप्रवर्तक चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज हुए हैं। जिनकी चर्या चतुर्थकालीन सम मुनियों के समान थी। इनके प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा प्राप्त कर, आर्यिका ज्ञानमती नाम पाकर, स्वनाम को सार्थक करते हुए परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करके, ग्रंथों का खूब स्वाध्याय करके, अपने ज्ञान को परिपक्व करके 'सहस्रनाम मंत्र' की रचना से अपनी लेखनी का शुभारम्भ करके अब तक छोटे–बड़े सभी ग्रंथों को मिलाकर ४०० ग्रंथों की रचना की है।

आज के वैज्ञानिक युग में पारस टी. वी. चैनल के माध्यम से लोग घर बैठे पूज्य माताजी के मुखारविन्द से प्रतिदिन ज्ञानामृत का पान करते हैं। जब वे हस्तिनापुर आकर पूज्य माताजी का दर्शन करते हैं, तो गद्‌गद् होकर कहते हैं कि माताजी हम तो आपके शुद्ध शास्त्रीय, आगमानुसार प्रवचन सुनकर धन्य हो गए।

वास्तव में पूज्य माताजी ने भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से निकली द्वादशांग वाणी को जिन्हें पूर्वाचार्यों ने ग्रंथरूप में लिपिबद्ध किया है उसी को आत्मसात करके, जन–जन के हिताय प्रवचन के द्वारा तथा ग्रंथों के द्वारा प्रदान कर रही हैं। अष्टसहस्री जैसे क्लिष्ट न्याय के ग्रंथ का अनुवाद करके पूज्य माताजी ने एक महान् कार्य किया है। विद्वद्‌वर्ग, युवावर्ग, बालवर्ग सभी के लिए पूज्य माताजी ने समयसार, नियमसार की टीका, कल्पद्रुम, इन्द्रध्वज आदि विधान, प्रतिज्ञा, परीक्षा, जीवनदान आदि उपन्यास एवं बालविकास के ४ भाग, जैसी पुस्तकें लिखकर सर्वांगीण ज्ञान का प्रचार प्रसार किया है।

मेरा परम सौभाग्य है कि पूज्य माताजी की कुल परम्परा में जन्म लेकर, उन्हें गुरुरूप में पाकर उनके ज्ञानामृत को प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य किया है। इस जिनागम नवनीत के विषयों को मुझे भी ग्रंथ में देखने और पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह ग्रंथ मेरे जीवन में एक दिन श्रुतज्ञान, केवलज्ञान को प्राप्त करावे, यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ पूज्य माताजी के चरणों में कोटि–कोटि नमन।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना

माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम-क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि– सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा-भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ, सम्मेदशिखर में आचार्य श्री शांतिसागर धाम इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।

शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, ऑनलाइन जैन इनसाइक्लोपीडिया आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 से हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं-

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत प्रतिवर्ष लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है- कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, तीन लोक रचना, नवग्रहशांति जिनमंदिर, चौबीस तीर्थंकर मंदिर एवं श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग प्रतिमाओं की स्थापना ।

5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।

6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

11. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस।

12. गणिनी ज्ञानमती दिगम्बर जैन पत्राचार परीक्षा केन्द्र का संचालन।

13. इंटरनेट पर जैनधर्म के इन्साइक्लोपीडिया (www.encyclopediaof jainism. com) का निर्माण।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ तथा महावीर जी अतिशय क्षेत्र के महावीर धाम परिसर में निर्मित पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर का संचालन होता है। वर्तमान में इस संस्थान के अन्तर्गत सम्मेदशिखर जी तीर्थ पर "आचार्य श्री शांतिसागर धाम" का निर्माण प्रारंभ किया जा रहा है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

जिनागम नवनीत में प्रयुक्त ग्रंथों के नाम

१. हस्तलिखित वसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ संग्रह
२. णमोकार मंत्रकल्प
३. ऋषिमंडल स्तोत्र
४. समाधि भक्ति
५. मुनिचर्या–ईर्यापथ शुद्धि से
६. कषायपाहुड़सुत्त
७. नीतिसार
८. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक
९. दर्शनसार
१०. पंचास्तिकायप्राभृत
११. अष्टपाहुड़
१२. आदिपुराण भाग–१
१३. उत्तरपुराण
१४. पद्मपुराण भाग–१
१५. पद्मपुराण भाग–२
१६. आराधना कथा कोष–संस्कृत
१७. आराधना कथाकोष–हिन्दी
१८. पद्मपुराण भाग–३
१९. तिलोयपण्णत्ति भाग–१
२०. णमोकार ग्रंथ
२१. रयणसार
२२. वृहद् द्रव्यसंग्रह
२३. हरिवंशपुराण
२४. आदिपुराण भाग–२
२५. उमास्वामी श्रावकाचार
२६. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
२७. तत्त्वार्थवृत्ति
२८. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक –९
२९. जिनसहस्रनाम–संस्कृत टीका
३०. तिलोयपण्णत्ति भाग–२
३१. लोक विभाग
३२. समयसार पूर्वार्ध
३३. प्रवचनसार
३४. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक–१
३५. मूलाचार पूर्वार्ध
३६. आचारसार
३७. प्राकृत भाव संग्रह
३८. जिनदत्त चरित्र
३९. श्रीपालचरित
४०. अभिषेक पाठ संग्रह

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
१.	णमोकार महामंत्र	१
२.	चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन है।	२
३.	णमोकार महामंत्र अनादि है, इसके अनेक प्रमाण हैं।	३
४.	ॐ मंत्र में पंचपरमेष्ठी समाविष्ट हैं	४
५.	पंचवर्णी ह्रीं में चौबीस तीर्थंकर विराजमान हैं	४
६.	अर्हं मंत्र की महिमा	६
७.	अर्हं मंत्र में पंचपरमेष्ठी विराजमान हैं	६
८.	'जिन' जिनेन्द्रदेव का लक्षण करते हुये श्रीपूज्यपाद स्वामी स्तुति करते हैं।	७
९.	सम्यक्त्व का लक्षण	७
१०.	सम्यग्दृष्टी यदि जिनशास्त्र का एक पद व एक अक्षर का भी श्रद्धान नहीं करता है तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है	८
११.	किन–किन आचार्यों के ग्रंथ प्रमाणीक हैं	९
१२.	कषायप्राभृत ग्रंथ परम्परागत भगवान की दिव्यध्वनि से प्राप्त है	१०
१३.	तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ आप्त–भगवान की वाणी से प्राप्त प्रमाणीक है	११
१४.	श्री कुंदकुंददेव–विदेह क्षेत्र में जाकर सीमंधर स्वामी का दर्शन किया है	११
१५.	युग की आदि में इंद्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमंदिर बनाये	१३
१६.	कैलाशपर्वत पर भरतचक्री द्वारा बनवाये गये मंदिर (उत्तर पुराण से)	१४
१७.	कैलाशपर्वत पर भरत चक्रवर्ती ने जिनमंदिर बनवाये थे (पद्मपुराण से)	१४
१८.	सुलोचना ने जिनमंदिर व जिनप्रतिमाएँ बनवाईं	१८
१९.	हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित जिनमंदिर बनवाये	१८
२०.	श्री रामचन्द्रजी ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाये	२१
२१.	धाराशिव नगर में १००८ खम्भों का जिनमंदिर	२२
२२.	लंका में रावण के महल में विशाल स्वर्णमयी १००० खंभों का शांतिनाथ मंदिर था	२३
२३.	श्रीरामचन्द्र जी ने लंका में स्वर्णमयी हजार खंभों वाले पद्मप्रभ मंदिर के दर्शन किये	२४
२४.	आकाश में विजय देव के नगर में जिनमंदिर हैं।	२४

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
२५.	श्रावकों की त्रेपन क्रियायें श्रीकुंदकुंददेव ने वर्णित की है।	२६
२६.	बावड़ी के जल में सात भव दिख जाते हैं	२६
२७.	एक चैत्यवृक्ष के चार मानस्तंभ हैं।	२६
२८.	केवलज्ञान वृक्ष ही अशोक वृक्ष है।	२७
	२४ तीर्थंकरों के अशोक वृक्ष	२७
२९.	२४ तीर्थंकरों के समय में २४ कामदेव	२७
३०.	२४ कामदेव के नाम	२८
३१.	तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि नियम से सिद्ध होते हैं।	२८
	पंचमकाल का प्रारम्भ समय	२८
३२.	हुंडावसर्पिणी के दोष से होने वाले कार्य	२८
३३.	अकृत्रिम जिनमंदिर के बावड़ी में जिनमंदिर	२९
३४.	पाण्डुकवन में मानस्तम्भों का वर्णन	३०
३५.	भागीरथ महामुनि के पाद प्रक्षाल के क्षीरोदधि के जल से गंगानदी भागीरथी कहलाई है और तीर्थपने को प्राप्त हो गई है।	३१
३६.	मंदिरों पर श्वेत पताकायें थी	३३
३७.	जब धर्म का ह्रास होने लगता है तब तीर्थंकर भगवान जन्म लेते हैं।	३३
३८.	दशरथ के पिता राजा अनरण्य ने अपने छोटे पुत्र अनन्तरथ के साथ दीक्षा ली थी	३४
३९.	विवर्ध्दन कुमार आदि चक्रवर्ती भरत के ९२३ पुत्र थें। ये निगोद से निकलकर इन्द्रगोप हुये पुनः भरत चक्रवर्ती के हाथी के पैर के नीचे मरकर मनुष्य हुये हैं।	३५
४०.	भरत चक्रवती द्वारा बनवाए गए जिनमंदिरों का राजा दशरथ ने जीर्णोद्धार कराया है।	३६
४१.	चक्रवर्ती हरिषेण ने पर्वतों पर जो मंदिर बनवाये थे, उनमें श्वेत पताकायें लहरा रही थीं।	३६
४२.	भगवान महावीर का जन्म कुण्डलपुर में रात्रि में हुआ	३७
४३.	भगवान महावीर ने देवकृत दिव्य भोगों का अनुभव किया	३७
४४.	भगवान महावीर विपुलाचल पर्वत पर पहुँचे	३८
४५.	भगवान महावीर की दिव्यध्वनि श्रावण कृष्णा एकम् को खिरी	३८

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
४६.	इन्द्र ने सर्वप्रथम भगवान का ऋषभदेव नाम रखा	३८
४७.	२४ तीर्थंकरों के प्रथम पारणा के नगर	३९
४८.	२४ तीर्थंकरों के प्रथम आहार दाता के नाम	३९
४९.	भगवान महावीर का प्रथम आहार स्थान	४०
५०.	दान का फल	४०
५१.	तीर्थंकरों के आहार के समय रत्नवृष्टि	४१
५२.	समस्त तीर्थंकरों को केवलज्ञान की प्राप्ति कितने उपवास के बाद हुई	४१
५३.	२४ तीर्थंकरों के केवलज्ञान उत्पत्ति के स्थान	४१
५४.	कौन से तीर्थंकर किस आसन से मोक्ष गए	४२
५५.	भीम महामुनि ने भाले के अग्रभाग से दिये जानेरूप वृत्तपरिसंख्यान नियम लिया था जो छह माह में पूर्ण हुआ था	४२
५६.	तीर्थंकरों के चैत्यवृक्ष की ऊँचाई का प्रमाण	४३
५७.	संक्रांति में जैनेश्वरी दीक्षा का मुहूर्त नहीं है	४३
५८.	पुण्य की महिमा का वर्णन	४४
५९.	पुण्य के ४ भेद हैं	४५
६०.	पुण्य से चार प्रकार की लक्ष्मी मिलती है	४५
६१.	पूजा के चार भेदों में मुनियों को दान देना भी शामिल है	४६
६२.	श्रावकों की इज्या आदि षट् क्रियायें हैं।	४७
६३.	हरिवंश पुराण में पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों में ही सल्लेखना को कहा है	४७
६४.	द्वारावती में कुबेर ने सर्वप्रथम एक हजार शिखरों वाला जिनमंदिर बनाया था	४८
६५.	सबसे अधिक अकालमृत्यु पांडव-कौरव व जरासंध तथा श्रीकृष्ण के संग्राम में कुरुक्षेत्र में हुई है।	५०
६६.	द्रौपदी का स्वयंवर हुआ है न कि भिक्षा में प्राप्त हुई	५१
६७.	द्रौपदी को पंचभर्तारी मानने वालों के प्रति आचार्यदेव के वचन	५४
६८.	उमास्वामी श्रावकाचार तत्त्वार्थसूत्र के कर्ता के द्वारा ही रचित है।	५५
६९.	अग्नि में हवन के प्रमाण एवं सप्तमप्रतिमाधारी ब्रह्मचारी भी हवन करें	५६
७०.	सचित्त को अचित्त करने की विधि	५८

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
७१.	भगवान को चढ़ाने के लिये पुष्प कैसे हों ?	५९
७२.	दूध से अभिषेक हेतु गाय, पुष्प चढ़ाने हेतु वाटिका एवं अभिषेक, पूजा के लिए जल हेतु कुंआ खुदवाने में दोष नहीं है।	६०
७३.	द्विदल कच्चे दूध और कच्चे दूध के जमाये दही में दो दाल वाले धान्य के मिलाने से बनता है।	६१
७४.	पांच स्थावर के चार-चार भेदों में दो-दो निर्जीव हैं।	६१
७५.	उत्तरपुराण ग्रंथ में लिखा है कि मोक्षकल्याणक में इन्द्र भगवान के शरीर का संस्कार करेंगे।	६३
७६.	दिव्यध्वनि का लक्षण	६४
७७.	श्रावण मास की प्रतिपदा वर्ष का प्रथम दिन है उसी दिन धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई है। वह तिथि युगादि भी है।	६५
७८.	षट्खंडागम आदि ग्रन्थ पूर्ण प्रमाण हैं	६५
७९.	साधु के २८ मूलगुण भिन्न प्रकार से हैं	६६
८०.	पुरुष की ७२ कलाओं के नाम	६७
८१.	भवन, भवनपुर, आवास व्यतंर के कहाँ हैं ?	६७
८२.	सुमेरु के नंदनवन में वापी के मध्य सौधर्मेन्द्र का प्रासाद है, उनके परिवार देवों की संख्या, आसन एवं वापिका का वर्णन	६८
८३.	पाण्डुक शिला का वर्णन	७२
८४.	ऐरावत हाथी का वर्णन	७४
८५.	चन्द्र सूर्य के विमान का वर्णन	७५
८६.	सच्चे मित्र से बढ़कर संसार में कोई नहीं है	७८
८७.	वचन चार प्रकार के होते हैं	७८
८८.	२४ तीर्थंकरों के साथ मोक्ष प्राप्त मुनियों की संख्या	७८
८९.	१६ कल्पों में मतभेद—अंतर	७९
९०.	सौधर्म आदि स्वर्गों में विमानों का वर्णन	८१
९१.	चतुर्थ गुणस्थान में सम्यक्चारित्र के बिना भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होता है।	८२
९२.	गर्भ कल्याणक में कुबेर माता-पिता का तीर्थ जल से अभिषेक करते हैं, पूजा करते हैं।	८२

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
९३.	पृथ्वी के छत्तीस (३६) भेदों का स्पष्टीकरण	८३
९४.	वर्ग, वर्गणा एवं स्पर्द्धक का लक्षण	८६
९५.	२८ मूलगुण धारण करना छेदापस्थापना चारित्र है (प्रवचनसार ग्रंथ से)	८६
	२८ मूलगुण धारण करना छेदोपस्थाना चारित्र (षट्खण्डागम–धवला टीका पुस्तक–१ से)	८९
९६.	अड़तालीस संस्कारों के नाम	९१
९७.	जैनशासन के अन्तर्गत नमोऽस्तु शासन हैं।	९२
९८.	देवों के यान-विमान,वस्त्राभरण नित्य व अनित्य भी हैं।	९३
९९.	श्री ऋषभदेव के चौरासी गणधर के नाम	९४
१००.	सभी समुद्रों के जल का स्वाद अपने नाम के अनुरूप है।	९६
१०१.	स्वयंप्रभ पर्वत के बाहर कर्मभूमि है एवं स्वयंप्रभ पर्वत से पूर्व असंख्यात द्वीपों में जघन्य भोगभूमियाँ हैं।	९६
१०२.	पंचामृत अभिषेक के प्रमाण	९७
१०३.	चंदन लेपन के प्रमाण	८९
१०४.	पुष्प चढ़ाने के प्रमाण	१००
१०५.	सचित्त पूजा निर्दोष है	१००
१०६.	स्त्रियों के द्वारा जिनाभिषेक के प्रमाण	१०१
१०७.	जनेऊ धारण के प्रमाण	१०२
१०८.	शासन देव–देवी आदि के प्रमाण	१०३
	प्रशस्ति	१०४

जिनागम नवनीत

(१)

णमोकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।१।।

इस महामंत्र में पांच पद हैं और पैंतीस अक्षर हैं। णमो अरिहंताणं ७ अक्षर, णमो सिद्धाणं ५, णमो आइरियाणं ७, णमो उवज्झायाणं ७, णमो लोए सव्वसाहूणं ९ अक्षर, इस प्रकार इस मंत्र में कुल ३५ अक्षर हैं।

अर्थ—लोक में जितने भी अरिहंत परमेष्ठी हैं, उन सभी अरिहंतों को नमस्कार होवे। लोक में सभी सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार होवे। लोक में जितने भी आचार्य हैं, उन सभी आचार्य परमेष्ठी को नमस्कार होवे और लोक में जितने भी उपाध्याय हैं उन सभी उपाध्याय परमेष्ठी को नमस्कार होवे और लोक में जितने भी साधु हैं, उन सभी साधु परमेष्ठी को नमस्कार होवे। अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये चार परमेष्ठी ढाईद्वीपों तक ही होते हैं एवं सिद्धशिला पर विराजमान सिद्ध परमेष्ठी भी ढाईद्वीप प्रमाण की सिद्धशिला के अग्रभाग पर ही विराजमान हैं।

अतः 'लोक' शब्द से यहाँ ढाईद्वीप तक ही लेना है। 'सर्व' शब्द से त्रैकालिक सर्व को लेना है। ऐसा कथन धवला पुस्तक–१ पृ. ५३ पर आया है। अर्थात् ये 'लोक' व 'सर्व' पद अन्त्यदीपक माने हैं। इसलिये इन्हें पांचों परमेष्ठी के साथ लगाना चाहिये। यहाँ आचार्य, उपाध्याय, साधु ये तीनों ही नग्न दिगम्बर मुद्राधारी मुनि ही माने गये हैं।

यह णमोकार महामंत्र अनादि निधन–शाश्वत महामंत्र है। ऐसे ही चत्तारि मंगल पाठ भी अनादिनिधन–शाश्वत है। ये दो पाठ अनादिनिधन माने गये हैं।

२. जिनागम नवनीत

चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन है।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। ह्रौं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा। अनादि सिद्धमंत्रः।

(हस्तलिखित वसुनंदि प्रतिष्ठासार संग्रह)

इसलिये ये महामंत्र और चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन है, ऐसा स्पष्ट है।

वर्तमान में विभक्ति लगाकर 'चत्तारिमंगल पाठ–नया पाठ पढ़ा जा रहा है, जो कि विचारणीय है। यह पाठ लगभग ५० वर्षों से अपनी दिगम्बर जैन परम्परा में आया है। देखें प्रमाण–'ज्ञानार्णव' जैसे प्राचीन ग्रंथ में बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ ही है। यह विक्रम संवत् १९६३ से लेकर कई संस्करणों में वि.सं. २०५४ तक में प्रकाशित है, इसमें पृ. ३०९ पर यही प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठातिलक जो कि वीर सं. २४५१ में सोलापुर से प्रकाशित है, उसमें पृष्ठ ४० पर यही प्राचीन पाठ है। आचार्य श्री वसुविंदु–अपरनाम जयसेनाचार्य द्वारा रचित 'प्रतिष्ठापाठ' जो कि वीर सं. २४५२ में प्रकाशित है, उसमें पृ. ८१ पर प्राचीन पाठ ही है। हस्तलिखित 'श्री वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ संग्रह' में भी प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठासारोद्धार जो कि वीर सं. २४४३ में छपा है, उसमें भी यही पाठ है। 'क्रियाकला' जो की वीर सं. २४६२ में छपा है, उसमें भी तथा जो 'सामायिकभाष्य' श्री प्रभाचंद्राचार्य द्वारा 'देववंदना' की संस्कृत टीका है, उसमें भी अरहंत मंगलं, अरहंत लोगुत्तमा,..... अरहंत सरणं पव्वज्जामि यही पाठ है पुनः यह संशोधित नया पाठ क्यों पढ़ा जाता है।

क्या ये पूर्व के आचार्य व्याकरण के ज्ञाता नहीं थे ? इन आचार्यों की कृति में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन कहाँ तक उचित है ?

नया पाठ–

चत्तरि मंगलं—अरहंता मंगलं.....,अरहंता लोगुत्तमा.....,अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि.....।

यह पाठ लगभग ४०–५० वर्षों से आया है ऐसा पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य आदि विद्वानों ने कहा था। जो भी हो, हमें और आपको प्राचीन पाठ ही पढ़ना चाहिए। सभी पुस्तकों में प्राचीन पाठ ही छपाना चाहिए व मानना चाहिए। नया परिवर्द्धित पाठ नहीं पढ़ना चाहिए।

३. जिनागम नवनीत
णमोकार महामंत्र अनादि है, इसके अनेक प्रमाण हैं।

श्रीमान् उमास्वामी आचार्य ने कहा है—

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणी-प्रभृतयः प्रययुर्विवर्त्ताः।
तेष्वप्ययं परतरं प्रथितं पुरापि, लब्ध्वैनमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः।।३।।

श्लोकार्थ—उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि के जो सुषमा, दुःषमा आदि अनन्तयुग पहले व्यतीत हो चुके हैं, उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्त्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ। (णमोकार महामंत्र का माहात्म्य)

'णमोकार मंत्रकल्प' में श्री सकलकीर्ति भट्टारक ने भी कहा है—

महापंचगुरोर्नाम, नमस्कारसुसम्भवम्।
महामंत्रं जगज्जेष्ठ-मनादिसिद्धमादिदम्।।६३।।
महापंचगुरूणां, पंचत्रिंशदक्षरप्रमम्।
उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्र-चेतसा भवहानये।।६८।।

श्लोकार्थ—नमस्कार मंत्र में रहने वाले पाँच महागुरुओं के नाम से निष्पन्न यह महामंत्र जगत में ज्येष्ठ–सबसे बड़ा और महान है, अनादिसिद्ध है और आदि अर्थात् प्रथम है।।६३।।

पाँच महागुरुओं के पैंतीस अक्षर प्रमाण मंत्र को तीन श्वासोच्छ्वासों में संसार भ्रमण के नाश हेतु एकाग्रचित्त होकर सभी भव्यजनों को जपना चाहिए अथवा ध्यान करना चाहिए।।६८।। (णमोकार मंत्रकल्प)

४. जिनागम नवनीत
ॐ मंत्र में पंचपरमेष्ठी समाविष्ट हैं

'ॐ' प्रणवमंत्र में अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु ये पांचों परमेष्ठी समाविष्ट हैं। ऐसे 'ॐ' के जाप्य से, ध्यान से व पूजा से सर्व मनोरथ सफल हो जाते हैं।

ओम् का अर्थ है–

अरिहंता असरीरा, आइरिया तह उवज्झाया मुणिणो।
पढमक्खरणिप्पण्णो, ओंकारो पंच परमेट्ठी।

अर्थ—अरिहंत का प्रथम अक्षर 'अ, अशरीर (सिद्ध) का 'अ', आचार्य का 'आ', उपाध्याय का 'उ', और मुनि (साधु) का 'म्' इस प्रकार पंचपरमेष्ठियों के प्रथम अक्षर (अ + अ + आ + उ + म्) को लेकर कातन्त्र व्याकरण के सूत्र 'समानः सवर्णे दीर्घी भवति परश्च लोपं' और 'उवर्णे ओ' सूत्र से संधि करने पर 'ओम्' मंत्र सिद्ध होता है। पुनः 'विरामे वा' सूत्र से म् का अनुस्वार होकर 'ॐ' शब्द बनता है।

५. जिनागम नवनीत
पंचवर्णी ह्रीं में चौबीस तीर्थंकर विराजमान हैं

पंचवर्णी 'ह्रीं' बीजाक्षर के जाप्य से, ध्यान से व पूजन से सर्वमनोरथ सफल होते हैं, सर्वरोग, शोक व भूतप्रेत आदि की बाधायें भी दूर हो जाती हैं, यह अतिशयकारी मंत्र है। इस 'ह्रीं' बीजाक्षर में चौबीसों तीर्थंकर विराजमान हैं।

ह्रीं की प्रतिमा बनवाकर प्रतिष्ठित कराकर मंदिर में विराजमान कर ध्यान करना चाहिये।

अर्हदाख्यः सवर्णान्तः सरेफो बिंदुमण्डितः।
तुर्यस्वरसमायुक्तो बहुध्यानादिमालितः।।१९।।
एकवर्णं द्विवर्णं च त्रिवर्णं तुर्यवर्णकं।
पंचवर्णं महावर्णं सपरं च परापरं।।२०।।
अस्मिन् बीजे स्थिताः सर्वे वृषभाद्या जिनोत्तमाः।
वर्णैर्निजैर्निजैर्युक्ता ध्यातव्यास्तोत्र संगताः।।२१।।
नादश्चन्द्रसमाकारो बिंदुर्नीलसमप्रभः।
कलारुणसमासांतः स्वर्णाभः सर्वतोमुखः।।२२।।

शिरः संलीन ईकारो विनीला वर्णतः स्मृतः।
वर्णानुसारिसंलीनं तीर्थकृन्मण्डलं नमः।।२३।।
चन्द्रप्रभपुष्पदन्तौ नादस्थितिसमाश्रितो।
बिन्दुमध्यगतौ नेमिसुव्रतौ जिनसत्तमौ।।२४।।
पद्मप्रभवासुपूज्यौ कलापदमधिश्रितो।
शिरईस्थितिसंलीनौ सुपार्श्वपार्श्वौ जिनोत्तमौ।।२५।।
शेषास्तीर्थंकराः सर्वे हरस्थाने नियोजिताः।
मायाबीजाक्षरं प्राप्ताश्चतुर्विंशतिरर्हतां।।२६।।
गतरागद्वेषमोहाः सर्वपापविवर्जिताः।
सर्वदा सर्वलोकेषु ते भवन्तु जिनोत्तमाः।।२७।।

पद्यानुवाद (शंभु छंद)

जो सांत सरेफ बिन्दुमंडित, चौथे स्वर से युत होता है।
वह 'ह्रीं' बीज ध्यानादि योग्य, अर्हंत नाम का होता है।।१९।।

यह श्वेत वर्ण है श्याम वर्ण है, लाल वर्ण औ नील वर्ण।
औ पीतवर्ण भी है उत्तम, सर्वोत्तम माना महावर्ण।।२०।।

इस ह्रीं बीज में स्थित हैं, निज निज वर्णों से युक्त सभी।
वृषभादि जिनेश्वर इस स्तोत्र में, स्थित ध्यानयोग नित भी।।२१।।

सित अर्ध चंद्रसम नाद बिन्दु, नीली मस्तक है लाल वर्ण।
सब तरफ हकार स्वर्णसम 'है', ईकार कहा है हरित वर्ण।।२२।।

इस तरह 'ह्रीं' है पंचवर्ण, उन उन वर्णों के तीर्थंकर।
उस उस थल में स्थापित कर, उन सबको नमन करो सुखकर।।२३।।

श्री चंद्रप्रभ औ पुष्पदंत, शशिसदृश नाद में स्थित हैं।
श्री नेमिनाथ औ मुनिसुव्रत, बिंदू के मध्य विराजित हैं।।२४।।

श्री पद्मप्रभू औ वासुपूज्य, मस्तक के मध्य अधिष्ठित हैं।
श्री जिनसुपार्श्व औ पार्श्वनाथ, ईकार वर्ण के आश्रित हैं।।२५।।

सोलह तीर्थंकर शेष सभी, ह औ रकार में राजित हैं।
माया बीजाक्षर ह्रीं मध्य, चौबीसों जिनवर आश्रित हैं।।२६।।

ये रागद्वेष औ मोह रहित, सब पाप रहित चौबिस जिनवर।
सम्पूर्ण लोक में भव्यों के, हेतू होवें वे नित सुखकर।।२७।।

(ऋषिमण्डल स्तोत्र से)

६. जिनागम नवनीत
अर्हं मंत्र की महिमा

'अर्हं' बीजाक्षर का जाप्य, ध्यान व मनन संपूर्ण कार्यों की सिद्धि करने वाला है।

आद्यंताक्षरसंलक्ष्यमक्षरं व्याप्य यत् स्थितम् ।
अग्निज्वालासमं नादं बिन्दुरेखासमन्वितम्।।१।।
अग्निज्वालासमाक्रान्तं मनोमल विशोधनम् ।
देदीप्यमानं हृत्पद्मे तत्पदं नौमि निर्मलं।।२।।

(पद्यानुवाद) शंभु छंद

आदी अक्षर 'अ' अंताक्षर, 'ह' इन दो को ले लेने में।
'आ' से लेकर 'स' पर्यंते, सब अक्षर आ जाते इनमें।।१।।

अग्नी ज्वाला 'र' बीजाक्षर, ऊपर यह बिंदु सहित सुन्दर।
'अर्हं' यह मंत्र बना सुंदर, यह मंत्र मनोमल शोधन कर।।२।।

(ऋषिमण्डल स्तोत्र से)

७. जिनागम नवनीत
अर्हं मंत्र में पंचपरमेष्ठी विराजमान हैं

अर्हमित्यक्षरब्रह्म - वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणिदध्महे।।११।।
कर्माष्टकविनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।१२।।
आकृष्टिं सुरसंपदां विदधते, मुक्तिश्रियो वश्यतां।
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां, विद्वैषमात्मैनसाम्।।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो, मोहस्य सम्मोहनम्।
पायात्पंचनमस्क्रियाक्षरमयी, साराधना देवता।।१३।।

(पद्यानुवाद) शंभु छंद

"अर्हं" यह अक्षर है, ब्रह्मरूप परमेष्ठी का वाचक।
सिद्धचक्र का सही बीज है, उसको नमन करूँ मैं नित।।११।।
अष्टकर्म से रहित मोक्ष-लक्ष्मी के मंदिर सिद्ध समूह।
सम्यक्त्वादि गुणों से युत श्री-सिद्धचक्र को सदा नमूं।।१२।।
सुरसंपति आकर्षण करता, मुक्तिश्री को वशीकरण।
चतुर्गति विपदा उच्चाटन, आत्म-पाप में द्वेष करण।।
दुर्गति जाने वाले का, स्तंभन मोह का सम्मोहन।
पंचनमस्कृति अक्षरमय, आराधन देव! करो रक्षण।।१३।।

(समाधि भक्ति से)

८. जिनागम नवनीत

'जिन' जिनेन्द्रदेव का लक्षण करते हुये श्रीपूज्यपाद स्वामी स्तुति करते हैं।

जितमदहर्षद्वेषा, जितमोहपरीषहा जितकषायाः।
जितजन्ममरणरोगा, जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः।।१०।।

मद अरु हर्ष द्वेष के विजयी, मोह परीषह के विजयी।
महा कषाय भटों के विजयी, भव कारण के अतःजयी।।
जन्म-मरण रोगों को जीता, मात्सर्यादिक दोषजयी।
सबको जीत कहाए तुम 'जिन', अतः रहो जयशील सही।।१०।।

(मुनिचर्या-ईर्यापथ शुद्धि से)

९. जिनागम नवनीत

सम्यक्त्व का लक्षण

सम्माइट्ठी जीवो पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा।।१०७।।

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का तो नियम से श्रद्धान करता ही है, किन्तु कदाचित् अज्ञानवश सद्भूत अर्थ को स्वयं नहीं जानता हुआ गुरु के नियोग से असद्भूत अर्थ का भी श्रद्धान करता है।

(कषायपाहुड़सुत्त अधिकार १०, गा. १०७, पृ. ६३७)

यह गाथा महान् ऋषिप्रवर श्री गुणधर आचार्य की है। ये आचार्य षट्खंडागम सूत्र के रचयिता ग्रंथकार श्री पुष्पंदत और भूतबलि आचार्य से भी प्रथम हुये हैं। इन्होंने 'कषायपाहुड़' नाम का जो ग्रंथ बनाया है उस पर श्री यतिवृषभ आचार्य ने चूर्णीसूत्रों की रचना की है तथा श्री वीरसेनाचार्य ने उन मूल गाथा और चूर्णीसूत्रों पर 'जयधवला' नाम से टीका रची है।

इस गाथा को यथास्थान बहुत से आचार्यों ने प्रयुक्त किया है। किन्हीं ने ज्यों की त्यों दे दिया है और किन्हीं ने उसी के अभिप्रायरूप किन्तु कुछ परिवर्तित रूप से दिया है।

यथा— धवला की छठी पुस्तक में यह 'गाथा' ज्यों की त्यों है।

(धवला पु. ६, पृ. २४२)

धवला की प्रथम पुस्तक में यह गाथा निम्नरूप से है—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।।११०।।

(धवला पु. १, पृ. १७४)

भगवती आराधना में यह गाथा ज्यों की त्यों है। पुनः आगे कहते हैं—

"सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी।।३३।।

पुनः सूत्र से सम्यक् अर्थ को दिखाने पर भी जब कोई श्रद्धान नहीं करता है तो वह उसी समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

(गोम्मटसार जीवकांड गाथा २७)

१०. जिनागम नवनीत

सम्यग्दृष्टी यदि जिनशास्त्र का एक पद व एक अक्षर का भी श्रद्धान नहीं करता है तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है

शिवकोटि आचार्य की यह भी गाथा ध्यान देने योग्य है—

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो विहु मिच्छाइट्ठी मुणेयव्वो।।३९।।

जो जीव सूत्रनिर्दिष्ट समस्त वाङ्मय का श्रद्धान करता हुआ भी यदि एक पद का व एक अक्षर का भी श्रद्धान नहीं करता है तो वह समस्त श्रुत की रुचि करता हुआ भी मिथ्यादृष्टि है।

(भगवती आराधना प्र. अ.)

११. जिनागम नवनीत
किन-किन आचार्यों के ग्रंथ प्रमाणीक हैं

श्रीभद्रबाहुः श्रीचंद्रो जिनचंद्रो महामुनिः।
गृद्धपिच्छगुरुः श्रीमान् लोहाचार्यो जितेन्द्रियः।।६७।।
एलाचार्यः पूज्यपादः सिंहनंदी महाकविः।
जिनसेनो वीरसेनो गुणनंदी महातपाः।।६८।।
समंतभद्रः श्रीकुम्भः शिवकोटिः शिवंकरः।
शिवायनो विष्णुसेनो गुणभद्रो गुणाधिकः।।६९।।
अकलंको महाप्राज्ञः सोमदेवो विदांवरः।
प्रभाचंद्रो नेमिचंद्र इत्यादिमुनिसत्तमैः।।७०।।
यच्छास्त्रं रचितं नूनं तदेवादेयमन्यकैः।
विसंघ्यं रचितं नैव प्रमाणं साध्वपि स्फुटम्।।७१।।
पूर्वाचार्यवचः श्रीमत्सर्वज्ञवचनोपमम्।
तज्जानन्नगारोऽत्र पूज्यः स्यादखिलैर्जनैः।।७२।।(नीतिसार)

श्री इंद्रनंदि आचार्य कहते हैं—

"श्री भद्रबाहु, श्रीचंद्र, जिनचंद्र, गृद्धपिच्छाचार्य, लोहाचार्य, एलाचार्य, पूज्यपाद, सिंहनंदी, जिनसेन, वीरसेन, गुणनंदी, समंतभद्र, श्रीकुम्भ, शिवकोटि, शिवायन, विष्णुसेन, गुणभद्र, अकलंकदेव, सोमदेव, प्रभाचंद्र और नेमिचंद्र इत्यादि मुनिपुंगवों के द्वारा रचित शास्त्र ही ग्रहण करने योग्य हैं। इनसे अतिरिक्त (सिंह, नंदि, सेन और देवसंघ इन चार संघ के आचार्यों से अतिरिक्त) विसंघ्य अर्थात् परम्पराविरुद्ध जनों के द्वारा रचित ग्रंथ अच्छे होकर भी प्रमाण नहीं हैं क्योंकि परम्परागत पूर्वाचार्यों के वचन सर्वज्ञ भगवान के वचनों के सदृश हैं। उन्हीं से ज्ञान प्राप्त करता हुआ अनगार साधु अखिल जनों में पूज्य होता है।"

इस कथन से षट्खंडागमसूत्र तथा कषायपाहुड़ ग्रंथ और उनकी धवला, जयधवलाटीका, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक, रत्नकरंड-श्रावकाचार, भगवती आराधना, महापुराण, उत्तरपुराण, यशस्तिलकचंपू, न्यायकुमुदचंद्र, गोम्मटसार, समयसार आदि ग्रंथ पूर्णतया प्रमाणीक सिद्ध हो जाते हैं।

(नीतिसार)

१२. जिनागम नवनीत
कषायप्राभृत ग्रंथ परम्परागत भगवान की दिव्यध्वनि से प्राप्त है

स्वयं जयधवलाकार प्रस्तुत ग्रंथ के गाथा सूत्रों और चूर्णिसूत्रों को किस श्रद्धा और भक्ति से देखते हैं, यह उन्हीं के शब्दों में देखिये। एक स्थान पर शिष्य के द्वारा यह शंका किये जाने पर कि यह कैसे जाना ? इसके उत्तर में श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं—

"एदम्हादो विउलगिरिमत्थयत्थवड्ढमाणदिवायरादो विणिग्गमिय गोदम-लोहज्ज-जंवुसामियादि आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं पाविय गाहास-रूवेण परिणमिय अज्जमंखुणागहत्थीहितो जयिवसहमुहणयिय चुण्णिसुत्तायारेण परिणददिव्वज्झुणिकिरणादो णव्वदे।

(जयध.आ.पत्र ३१३)

"विपुलाचल के शिखर पर विराजमान वर्धमान दिवाकर से प्रगट होकर गौतम, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी आदि की आचार्य परम्परा से आकर और गुणधराचार्य को प्राप्त होकर गाथा स्वरूप से परिणत हो पुनः आर्यमंक्षु और नागहस्ती के द्वारा यतिवृषभ को प्राप्त होकर और उनके मुखकमल से चूर्णिसूत्र के आकार से परिणत दिव्यध्वनिरूप किरण से जानते हैं।"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कषायप्राभृत ग्रंथ साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि तुल्य है ऐसा टीकाकार का कथन है। दूसरी बात यह है कि आचार्य परम्परा की महत्ता पर पूर्ण प्रकाश दिख रहा है। 'गुणधराचार्य ने आचार्य परम्परा से ज्ञान पाया और गाथारूप से परिणत किया। पुनः आचार्य परम्परा से ही आर्यमंक्षु और नागहस्ती मुनि को उसका ज्ञान मिला। अनंतर उनके चरण सानिध्य में ज्ञान प्राप्तकर यतिवृषभ ने चूर्णिसूत्रों की रचना की है।

जयधवलाकार ने तो इन 'कसायपाहुड़' की गाथाओं को '**अणंतत्थगब्भाओ**' अनंत अर्थ गर्भित कहा है।

इन प्रकरणों को देखकर ग्रंथों का अर्थ प्रतिपादित करते समय अथवा प्रवचन करते समय इसी प्रकार से पूर्वाचार्यों के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए अपने और सुनने वालों के सम्यक्त्व को दृढ़ करना चाहिए।

(कषायपाहुड़सुत्त प्रस्तावना से पृ. ११)

१३. जिनागम नवनीत
तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ आप्त-भगवान की वाणी से प्राप्त प्रमाणीक है

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में श्री विद्यानंदि महोदय तत्त्वार्थसूत्र को आप्तमूलक सिद्ध कर रहे हैं—

''संप्रदायाव्यवच्छेदाविरोधादधुना नृणाम्।
सद्गोत्राद्युपदेशोऽत्र यद्वत्तद्वद्विचारतः।।६।।
प्रमाणमागमः सूत्रमाप्तमूलत्वसिद्धितः।।''

संप्रदाय—परम्परा के व्यवच्छेद का अविरोध होने से यह सूत्र आगम प्रमाण है क्योंकि यह आप्तमूलक सिद्ध है। जैसे—आजकल मनुष्यों के सद्गोत्र (काश्यप आादि) आदि का उपदेश प्रवाहरूप से पाया जाता है। उसी प्रकार से विचार करने से यह सूत्ररूप आगम पूर्णतया प्रमाणभूत ही है।

(तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मूल, पृ. ८)

१४. जिनागम नवनीत
श्री कुंदकुंददेव-विदेह क्षेत्र में जाकर सीमंधर स्वामी का दर्शन किया है

गुरुदेव प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महाराज के मुख से सुना है कि किसी समय श्री कुंदाकुंदाचार्यदेव भगवान सीमंधर स्वामी के समवसरण का ध्यान कर रहे थे, तभी एक देव ने आकर उन्हें अपने विमान में बिठाकर विदेह क्षेत्र में श्री सीमंधर भगवान के समवसरण में पहुँचा दिया।

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्ववाणेण।
ण विबोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति।।४२।। (दर्शनसार)

वि.सं. ९९० में विद्यमान देवसेन आचार्य ने दर्शनसार में इनके विदेहगमन की बात कही है। यथा—

''यदि पद्मनंदी स्वामी श्री सीमंधर स्वामी के दिव्यज्ञान से सम्बोधन न प्राप्त करते तो श्रमण सुमार्ग को कैसे जानते।''

श्री जयसेनाचार्य ने पंचास्तिकाय प्राभृत के प्रारंभ में कहा है—

अथ श्रीकुमारनन्दिसिद्धान्तदेवशिष्यैः प्रसिद्धकथान्यायेन पूर्वविदेहं गत्वा वीतरागसर्वज्ञश्रीमंदरस्वामीतीर्थंकरपरमदेवं दृष्ट्वा तन्मुखकमलवनिर्गत-दिव्यवाणीश्रवणावधारितपदार्थाच्छुद्धात्मतत्त्वादिसारार्थं गृहीत्वा पुनरप्यागतैः

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पद्मनन्द्याद्यपराभिधेयैरन्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वगौणमुख्य-प्रतिपत्त्यर्थं अथवा शिवकुमारमहाराजादिसंक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं विरचिते पञ्चास्तिकायप्राभृतशास्त्रे यथाक्रमेणाधिकारशुद्धिपूर्वकं तात्पर्यार्थव्याख्यानं कथ्यते।

यह कथा प्रसिद्ध है कि श्री कुमारनन्दि सिद्धान्तदेव के शिष्य श्रीमत् कुन्दकुन्दाचार्य देव जिनके पद्मनंदि आदि (ऐलाचार्य, वक्रग्रीव, गृद्धपिच्छ) नाम भी प्रसिद्ध हैं, पूर्वविदेह में गए। वहाँ वीतराग सर्वज्ञ श्रीमंदरस्वामी तीर्थंकर परमदेव के दर्शन किये तथा उनके मुखकमल से प्रगट दिव्यवाणी को सुन करके व उससे पदार्थों को समझकर शुद्ध आत्मीकतत्त्व सार अर्थ ग्रहण किया फिर लौटकर उन्होंने अंतरंगतत्त्व बहिरंगतत्त्व को गौण या मुख्यपने बताने के लिए अथवा शिवकुमार महाराज को आदि लेकर संक्षेप रुचि के धारक शिष्यों को समझाने के लिए इस पंचास्तिकाय प्राभृत शास्त्र को रचा। इसी ग्रंथ का तात्पर्य अर्थरूप व्याख्यान यथाक्रम से अधिकारों की शुद्धि के साथ किया जाता है।

(पंचास्तिकाय प्राभृत, पृ. ३, ४)

श्री श्रुतसागर सूरि ने भी षट्प्राभृत की टीका में प्रत्येक प्राभृत की समाप्ति में विदेहगमन की बात कही है। यथा—

इति श्री पद्मनन्दि कुन्दकुन्दाचार्य-वक्रग्रीवाचार्यैलाचार्यगृद्धपिच्छाचार्य-नामपञ्चकविराजितेन सीमन्धरस्वामि ज्ञानसम्बोधित-भव्य-जीवेन श्रीजिनचन्द्रसूरि-भट्टारक-पट्टाभरणभूतेन कलिकाल-सर्वज्ञेन विरचिते षट्प्राभृते ग्रन्थे सर्वमुनि-मण्डलीमण्डितेन कलिकाल गौतमस्वामिना श्रीमल्लिभूषणेन भट्टारकेणानुमतेन सकलविद्वज्जनसमाजसम्मानितेनोभयभाषा-कवि-चक्रवर्तिना श्रीविद्यानन्दि-गुर्वन्तेवासिना सूरिवरश्रीश्रुतसागरेण विरचिता चरणप्राभृतटीका द्वितीया।

इस प्रकार श्री पद्मनन्दी, कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृद्धपिच्छाचार्य इन पाँच नामों से सुशोभित, सीमन्धर स्वामी के ज्ञान से भव्यजीवों को सम्बोधित करने वाले श्री जिनचन्द्रसूरि भट्टारक के पट्ट के आभरणस्वरूप, कलिकाल सर्वज्ञ कुन्दकुन्दाचार्य के द्वारा विरचित षट्पाहुड़ ग्रंथ में समस्त मुनियों के समूह से सुशोभित, कलिकाल के गौतमस्वामी श्री मल्लिभूषण भट्टारक के द्वारा अनुमत, सकल विद्वत्समाज के द्वारा सन्मानित, उभय-भाषा-संबंधी कवियों के चक्रवर्ती श्री विद्यानन्द गुरु के शिष्य सूरिवर श्रीश्रुतसागर के द्वारा विरचित चारित्र-पाहुड़ की टीका सम्पूर्ण हुई।

(अष्टपाहुड़, पृ. १०५, संस्कृत, हिन्दी टीका)

१५. जिनागम नवनीत
युग की आदि में इंद्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमंदिर बनाये

श्रुत्वेति तद्वचो दीनं करुणाप्रेरिताशयः। मनः प्रणिदधावेवं भगवानादिपुरुषः।।१४२।।
पूर्वापरविदेहेषु या स्थितिः समवस्थिता। साद्य प्रवर्त्तनीयात्र ततो जीवन्त्यमूः प्रजाः।।१४३।।
षट्कर्माणि यथा तत्र यथा वर्णाश्रमस्थितिः। यथा ग्रामगृहादीनां संस्त्यायाश्च पृथग्विधाः।।१४४।।
तथात्राप्युचिता वृत्तिरुपायैरेभिरङ्गिनाम्। नोपायान्तरमस्त्येषां प्राणिनां जीविकां प्रति।।१४५।।
कर्मभूरद्य जातेयं व्यतीतौ कल्पभूरुहाम्। ततोऽत्र कर्मभिः षड्भिः प्रजानां जीविकोचिता।।१४६।।
इत्याकलय्य तत्क्षेमवृत्त्युपायं क्षणं विभुः। मुहुराश्वासयामास भा भैष्टेति तदा प्रजाः।।१४७।।
अथानुध्यानमात्रेण विभो शक्रः सहामरैः। प्राप्तस्तज्जीवनोपायानित्यकार्षीद्विभागतः।।१४८।।
शुभे दिने सुनक्षत्रे सुमुहूर्त्ते शुभोदये। स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषूच्चैरानुकूल्ये जगद्गुरोः।।१४९।।
कृतप्रथमाङ्गल्ये सुरेन्द्रो जिनमन्दिरम्। न्यवेशयत् पुरस्यास्य मध्ये दिक्ष्वप्यनुक्रमात्।।१५०।।
कोसलादीन् महादेशान् साकेतादिपुराणि च। सारामसीमनिगमान् खेटादींश्च न्यवेशयत्।।१५१।।

इस प्रकार प्रजाजनों के दीन वचन सुनकर जिनका हृदय दया से प्रेरित हो रहा है ऐसे भगवान आदिनाथ अपने मन में ऐसा विचार करने लगे।।१४२।। कि पूर्व और पश्चिम विदेह क्षेत्र में जो स्थिति वर्तमान में है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है उसी से यह प्रजा जीवित रह सकती है।१४३।। वहाँ जिस प्रकार असि, मषी आदि छह कर्म हैं, जैसी क्षत्रिय आदि वर्णों की स्थिति है और जैसी ग्राम-घर आदि की पृथक्-पृथक् रचना है उसी प्रकार यहाँ पर भी होनी चाहिए। इन्हीं उपायों से प्राणियों की आजीविका चल सकती है। इनकी आजीविका के लिए और कोई उपाय नहीं है।।१४४-१४५।। कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर अब यह कर्मभूमि प्रकट हुई है इसलिए यहाँ प्रजा को असि, मषी आदि छह कर्मों के द्वारा ही आजीविका करना उचित है।।१४६।। इस प्रकार स्वामी वृषभदेव ने क्षण भर प्रजा के कल्याण करने वाली आजीविका का उपाय सोचकर उसे बार-बार आश्वासन दिया कि तुम भयभीत मत होओ।।१४७।। अथानन्तर भगवान् के स्मरण करने मात्र से देवों के साथ इन्द्र आया और उसने नीचे लिखे अनुसार विभाग कर प्रजा की जीविका के उपाय किये।।।१४८।। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न के समय तथा सूर्य आदि ग्रहों के अपने-अपने उच्च स्थानों में स्थित रहने और जगद्गुरु भगवान् के हर एक प्रकार की अनुकूलता होने पर इन्द्र ने प्रथम ही मांगलिक कार्य किया और **फिर उसी अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर की रचना की। इसके बाद पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर इस प्रकार चारों दिशाओं में भी यथाक्रम से जिनमन्दिरों की रचना की।**।१४९-

१५०।। तदनन्तर कौशल आदि महादेश, अयोध्या आदि नगर, वन और सीमा सहित गाँव तथा खेटों की रचना की थी।।१५१।।

(आदिपुराण पर्व-१६, पृ. ३५९।)

१६. जिनागम नवनीत
कैलाशपर्वत पर भरतचक्री द्वारा बनवाये गये मंदिर
(उत्तर पुराण से)

राज्ञाप्याज्ञापिता यूयं कैलासे भरतेशिना। गृहाः कृता महारत्नैश्चतुर्विंशतिरर्हताम्।।१०७।।
तेषां गङ्गां प्रकुर्वीध्वं परिखां परितो गिरिम्। इति तेऽपि तथा कुर्वन् दण्डरत्नेन सत्वरम्।।१०८।।

सागर चक्रवर्ती ने पुत्रों को हर्षित होकर आज्ञा दी कि भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर महारत्नों से अरहन्तदेव के चौबीस मन्दिर बनवाये हैं, तुम लोग उस पर्वत के चारों ओर गङ्गा नदी को उन मन्दिरों की परिखा बना दो।' उन राजपुत्रों ने भी पिता की आज्ञानुसार दण्डरत्न से वह काम शीघ्र ही कर दिया।।१०७-१०८।।

(उत्तरपुराण पर्व ४८, पृ. १०।)

१७. जिनागम नवनीत
कैलाशपर्वत पर भरत चक्रवर्ती ने जिनमंदिर बनवाये थे
(पद्मपुराण से)

अथानन्तर एक बार दशानन नित्यालोक नगर में राजा नित्यालोक की श्रीदेवी से समुत्पन्न रत्नावली नाम की पुत्री को विवाह कर बड़े हर्ष के साथ आकाशमार्ग से अपनी नगरी की ओर आ रहा था। उस समय उसके मुकुट में जो रत्न लगे थे उनकी किरणों से आकाश सुशोभित हो रहा था।।१०२-१०३।। जिस प्रकार बड़ा भारी वायुमण्डल मेरु के तट को पाकर सहसा रुक जाता है उसी प्रकार मन के समान चंचल पुष्पक विमान सहसा रुक गया।।१०४।। जब पुष्पक विमान की गति रुक गयी और घण्टा आदि से उत्पन्न होने वाला शब्द भंग हो गया तब ऐसा जान पड़ता था मानो तेजहीन होने से लज्जा के कारण उसने मौन ही ले रखा था।।१०५।। विमान को रुका देख दशानन ने क्रोध से दमकते हुए कहा कि अरे यहाँ कौन है ? कौन है ?।।१०६।। तब सर्व वृत्तान्त को जानने वाले मारीचि ने कहा कि हे देव! सुनो, यहाँ कैलास पर्वत पर एक मुनिराज प्रतिमा योग से विराजमान हैं।।१०७।। ये सूर्य के सम्मुख विद्यमान हैं और अपनी किरणों से सूर्य की किरणों को इधर-उधर प्रक्षिप्त कर रहे हैं। समान शिलातल पर ये रत्नों के

स्तम्भ के समान अवस्थित हैं।।१०८।। घोर तपश्चरण को धारण करने वाले ये कोई महान् वीर पुरुष हैं और शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। इन्हीं से वह वृत्तान्त हुआ है।।१०९।। इन मुनिराज के प्रभाव से जब तक विमान खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता है, तब तक शीघ्र ही इस स्थान से विमान को लौटा लेता हूँ।।११०।। अथानन्तर मारीचि के वचन सुनकर अपने पराक्रम के गर्व से गर्वित दशानन ने कैलास पर्वत की ओर देखा।।१११।। दशानन ने उस पर्वत पर उतरकर उन महामुनि के दर्शन किये। वे महामुनि ध्यानरूपी समुद्र में निमग्न थे और तेज के द्वारा चारों ओर मण्डल बाँध रहे थे।।१२६।। दिग्गजों के शुण्डादण्ड के समान उनकी दोनों भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं और उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सर्पों से आवेष्टित चन्दन का बड़ा वृक्ष ही हो।।१२७।। वे आतापन योग में शिलापीठ के ऊपर निश्चल बैठे थे और प्राणियों के प्रति ऐसा संशय उत्पन्न कर रहे थे कि ये जीवित हैं भी या नहीं।।१२८।। तदनन्तर 'यह बालि है' ऐसा जानकर दशानन पिछले वैर का स्मरण करता हुआ क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठा।।१२९।। जो ओंठ चबा रहा था, जिसकी आवाज अत्यन्त कर्कश थी और जो अत्यन्त देदीप्यमान आकार का धारक था ऐसा दशानन भ्रकुटी बाँधकर बड़ी निर्भयता के साथ मुनिराज से कहने लगा।।१३०।। कि अहो! तुमने यह बड़ा अच्छा तप करना प्रारम्भ किया है कि अब भी अभिमान से मेरा विमान रोका जा रहा है।।१३१।। धर्म कहाँ और क्रोध कहाँ? अरे दुर्बुद्धि ! तू व्यर्थ ही श्रम कर रहा है और अमृत तथा विष को एक करना चाहता है।।१३२।। इसलिए मैं तेरे इस उद्धत अहंकार को आज ही नष्ट किये देता हूँ। तू जिस कैलास पर्वत पर बैठा है उसे उखाड़कर तेरे ही साथ अभी समुद्र में फेंकता हूँ।।१३३।।

तदनन्तर उसने समस्त विद्याओं का ध्यान किया जिससे आकर उन्होंने उसे घेर लिया। अब दशानन ने इन्द्र के समान महाभयंकर रूप बनाया और महाबाहुरूपी वन से सब ओर सघन अन्धकार फैलाता हुआ वह पृथिवी को भेदकर पाताल में प्रविष्ट हुआ। पाप करने में वह उद्यत था ही।।१३४-१३५।। तदनन्तर क्रोध के कारण जिसके नेत्र अत्यन्त लाल हो रहे थे और जिसका मुख क्रोध से मुखरित था ऐसे प्रबल पराक्रमी दशानन ने अपनी भुजाओं से कैलास पर्वत को उठाना प्रारम्भ किया।।१३६।। आखिर, पृथिवी को अत्यन्त चंचल करता हुआ कैलास पर्वत स्वस्थान से चलित हो गया।।१३७।। तदनन्तर जब समस्त संसार संवर्तक नामक वायु से ही मानो आकुलित हो गया था तब भगवान् बाली मुनिराज ने अवधिज्ञान से दशानन नामक राक्षस को जान लिया।।१४५।। यद्यपि उन्हें स्वयं कुछ भी पीड़ा नहीं हुई थी और पहले की तरह उनका समस्त शरीर निश्चलरूप से अवस्थित था तथापि वे धीर, वीर और क्रोध से रहित हो अपने चित्त में

इस प्रकार विचार करने लगे कि।।१४६।।

कारितं भरतेनेदं जिनायतनमुत्तमम्। सर्वरत्नमयं तुङ्गं बहुरूपविराजितम्।।१४७।।
प्रत्यहं भक्तिसंयुक्तैः कृतपूजं सुरासुरैः। भा विनाशि चलत्यस्मिन् पर्वते भिन्नपर्वणि।।१४८।।
ध्यात्वेति चरणाङ्गुष्टपीडितं गिरिमस्तकम्। चकार शोभनध्यानाददूरीकृतचेतनः।।१४९।।

चक्रवर्ती भरत ने ये नाना प्रकार के सर्वरत्नमयी ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिर बनवाये हैं। भक्ति से भरे सुर और असुर प्रतिदिन इनकी पूजा करते हैं सो इस पर्वत के विचलित हो जाने पर कहीं ये जिनमन्दिर नष्ट न हो जावें।।१४७।। ऐसा विचारकर शुभ ध्यान के निकट ही जिनकी चेतना थी ऐसे मुनिराज बाली ने पर्वत के मस्तक को अपने पैर के अँगूठे से दबा दिया।।१४८-१४९।। तदनन्तर जिसकी भुजाओं का वन (बल) बहुत भारी बोझ से आक्रान्त होने के कारण अत्यधिक टूट रहा था, जो दुख से आकुल था, जिसकी लाल-लाल मनोहर आँखें चंचल हो रही थीं ऐसा दशानन अत्यन्त व्याकुल हो गया। उसके सिर का मुकुट टूटकर नीचे गिर गया और उस नंगे सिर पर पर्वत का भार आ पड़ा। नीचे धँसती हुई पृथिवी पर उसने घुटने टेक दिये। स्थूल होने के कारण उसकी जंघाएँ मांसपेशियों में निमग्न हो गयीं।।१५०-१५१।। उसके शरीर से शीघ्र ही पसीने की धारा बह निकली और उससे उसने रसातल को धो दिया। उसका सारा शरीर कछुए के समान संकुचित हो गया।।१५२।। उस समय चूँकि उसने सर्व प्रयत्न से चिल्लाकर समस्त संसार को शब्दायमान कर दिया था इसलिए वह पीछे चलकर सर्वत्र प्रचलित 'रावण' इस नाम को प्राप्त हुआ।।१५३।। रावण की स्त्रियों का समूह अपने स्वामी के उस अश्रुतपूर्ण दीन-हीन शब्द को सुनकर व्याकुल हो विलाप करने लगी।।१५४।। मन्त्री लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। वे युद्ध के लिए तैयार हो व्यर्थ ही इधर-उधर फिरने लगे। उनके वचन बार-बार बीच में ही स्खलित हो जाते थे और हथियार उनके हाथ से छूट जाते थे।।१५५।। मुनिराज के वीर्य के प्रभाव से देवों के दुन्दुभि बजने लगे और भ्रमर सहित फूलों की वृष्टि आकाश को आच्छादित कर पड़ने लगी।।१५६।।

क्रीड़ा करना जिनका स्वभाव था ऐसे देवकुमार आकाश में नृत्य करने लगे और देवियों की संगीतध्वनि वंशी की मधुर ध्वनि के साथ सर्वत्र उठने लगी।।१५७।। तदनन्तर मन्दोदरी ने दीन होकर मुनिराज को प्रणाम कर याचना की—कि हे अद्भुत पराक्रम के धारी! मेरे लिए पतिभिक्षा दीजिए।१५८।। तब महामुनि ने दयावश पैर का अँगूठा ढीला कर लिया और रावण भी पर्वत को जहां का तहां छोड़ क्लेशरूपी अटवी से बाहर निकला।।१५९।।

तदनन्तर जिसने तप का बल जान लिया था ऐसे रावण ने जाकर मुनिराज को

प्रणाम कर बार-बार क्षमा माँगी और इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ किया।।१६०।। कि हे पूज्य! आपने जो प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिनेन्द्रदेव के चरणों को छोड़कर अन्य के लिए नमस्कार नहीं करूँगा यह उसी की सामर्थ्य का फल है।।१६१।। हे भगवन्! आपके तप का महाफल निश्चय से सम्पन्न है इसीलिए तो आप तीन लोक को अन्यथा करने में समर्थ हैं।।१६२।। तप से समृद्ध मुनियों की थोड़े ही प्रयत्न से उत्पन्न जैसी सामर्थ्य देखी जाती है। हे नाथ! वैसी सामर्थ्य इन्द्रों की भी नहीं देखी जाती है।।१६३।। इस प्रकार स्तुति कर उसने मुनिराज को प्रणाम कर तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, अपने आपकी बहुत निन्दा की और दुःखवश मुँह से सू-सू शब्द कर रुदन किया।।१७३।। मुनिराज के समीप जो जिनमन्दिर था लज्जा से युक्त और विषयों से विरक्त रावण उसी के अन्दर चला गया।।१७४।। वहाँ उसने चन्द्रहास नामक खड्ग को अनादर से पृथिवी पर फेंक दिया और अपनी स्त्रियों से युक्त होकर जिनेन्द्रदेव की पूजा की।।१७५।। उसके भाव भक्ति में इतने लीन हो गये थे कि उसने अपनी भुजा की नाड़ीरूपी तन्त्री को खींचकर वीणा बजायी और सैकड़ों स्तुतियों के द्वारा जिनराज का गुणगान किया।।१७६।।

ऋषभाय नमो नित्यमजिताय नमो नमः। संभवाय नमोऽजस्त्रमभिनन्दनरूढये।।१८५।।
नमः सुमतये पद्मप्रभाय सततं नमः। सुपार्श्वाय नमः शश्वन्नमश्चन्द्रसमत्विषे।।१८६।।
नमोऽस्तु पुष्पदन्ताय शीतलाय नमो नमः। श्रेयसे वासुपूज्याय नमो लब्धात्मतेजसे।।१८७।।
विमलाय नमस्त्रेधा नमोऽनन्ताय संततम्। नमो धर्माय सौख्यानां नमो मूलाय शान्तये।।१८८।।
नमः कुन्थुजिनेन्द्राय नमोऽरस्वामिने सदा। नमो मल्लिमहेशाय नमः सुव्रतदायिने।।१८९।।
अन्येभ्यश्च भविष्यद्भयो भूतेभ्यश्च सुभावतः। नमोऽस्तु जिननाथेभ्यः श्रमणेभ्यश्च सर्वदा।।१९०।।
नमः सम्यक्त्वयुक्ताय ज्ञानायैकान्तनाशिने। दर्शनाय नमोऽजस्रं सिद्धेभ्योऽनारतं नमः।।१९१।।

ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयोनाथ, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, सौख्यों के मूल कारण शान्तिनाथ, कुन्थु जिनेन्द्र, अरनाथ, मल्लि महाराज और मुनिसुव्रत भगवान् इन वर्तमान तीर्थंकरों को मन-वचन-काय से नमस्कार हो। इनके सिवाय जो अन्य भूत और भविष्यत्काल सम्बन्धी तीर्थंकर हैं उन्हें नमस्कार हो। साधुओं के लिए सदा नमस्कार हो। सम्यक्त्वसहित ज्ञान और एकान्तवाद को नष्ट करने वाले दर्शन के लिए निरन्तर नमस्कार हो तथा सिद्ध परमेश्वर के लिए सदा नमस्कार हो।।१८५-१९१।।

(पद्मपुराण, भाग-१, पर्व ९, पृ. २१४ से २२१।)

१८. जिनागम नवनीत
सुलोचना ने जिनमंदिर व जिनप्रतिमाएँ बनवाईं

कारयन्ती जिनेन्द्रार्चाश्चित्रा मणिमयीर्बहूः। तासां हिरण्मयान्येव विश्वोपकरणान्यपि।।१७३।।
तत्प्रतिष्ठाभिषेकान्ते महापूजाः प्रकुर्वती। मुहुः स्तुतिभिरर्थ्याभिः स्तुवती भक्तितोऽर्हतः।।१७४।।
ददती पात्रदानानि मानयन्ती महामुनीन्। शृण्वती धर्ममाकर्ण्य भावयन्ती मुहुर्मुहुः।।१७५।।
आप्तागमपदार्थांश्च प्राप्तसम्यक्त्वशुद्धिका। अथ फाल्गुननन्दीश्वरेऽसौ भक्त्या जिनेशिनाम्।।१७६।।
विधायाष्टाह्निकीं पूजामभ्यर्च्यार्चा यथाविधि। कृतोपवासा तन्वङ्गी शेषां दातुमुपागता।।१७७।।
नृपं सिंहासनासीनं सोऽप्युत्थाय कृताञ्जलिः। तद्दत्तशेषामादाय निधाय शिरसि स्वयम्।।१७८।।
उपवासपरिश्रान्ता पुत्रिके त्वं प्रयाहि ते। शरणं पारणाकाल इति कन्यां व्यसर्जयत्।।१७९।।

उस सुलोचना ने श्री जिनेन्द्रदेव की अनेक प्रकार की रत्नमयी बहुत सी प्रतिमाएँ बनवाई थीं और उनके सब उपकरण भी सुवर्ण ही के बनवाये थे। प्रतिष्ठा तथा तत्सम्बन्धी अभिषेक हो जाने के बाद वह उन प्रतिमाओं की महापूजा करती थी, अर्थपूर्ण स्तुतियों के द्वारा श्री अर्हन्तदेव की भक्तिपूर्वक स्तुति करती थी, पात्र दान देती थी, महामुनियों का सम्मान करती थी, धर्म सुनती थी तथा धर्म को सुनकर आप्त, आगम और पदार्थों का बार-बार चिन्तवन करती हुई सम्यग्दर्शन की शुद्धता को प्राप्त करती थी। अथानन्तर—फाल्गुन महीने की अष्टान्हिका में उसने भक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्रदेव की अष्टाह्निकी पूजा की, विधिपूर्वक प्रतिमाओं की पूजा की, उपवास किया और वह कृशांगी पूजा के शेषाक्षत देने के लिए सिंहासन पर बैठे हुए राजा अकम्पन के पास गयी। राजा ने भी उठकर और हाथ जोड़कर उसके दिए हुए शेषाक्षत लेकर स्वयं अपने मस्तक पर रखे तथा यह कहकर कन्या को विदा किया कि हे पुत्रि, तू उपवास से खिन्न हो रही है अब घर जा, यह तेरे पारणा का समय है।।१७३ से १७९।।

(आदिपुराण पर्व ४३, पृ. ३६८, ३६९)

१९. जिनागम नवनीत
हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित जिनमंदिर बनवाये

अथासावन्यदापृच्छत् सुमालिनमुदद्भुतः। उच्चैर्गगनमारूढो विनयानतविग्रहः।।२७२।।
सरसीरहितेऽमुष्मिन् पूज्यपर्वतमूर्द्धनि। वनानि पश्य पद्मानां जातान्येतन्महाद्भुतम्।।२७३।।
तिष्ठन्ति निश्चलाः स्वामिन् कथमत्र महीतले। पतिता विविधच्छायाः सुमहान्तः पयोमुचः।।२७४।।
नमः सिद्धेभ्य इत्युक्त्वा सुमालो तमथागदत्। नामूनि शतपत्राणि न चैते वत्स तोयदाः।।२७५।।
सितकेतुकृतच्छायाः सहस्राकारतोरणाः। शृङ्गेषु पर्वतस्यामी विराजन्ते जिनालयाः।।२७६।।

कारिता हरिषेणेन सज्जनेन महात्मना। एतान् वत्स नमस्य त्वं भव पूतमनाः क्षणात्।।२७७।।
ततस्तत्रस्थ एवासौ नमस्कृत्य जिनालयान्। उपाच विस्मयापन्नो धनदस्य विमर्दकः।।२७८।।
आसीत्किं तस्य माहात्म्यं हरिषेणस्य कथ्यताम्। प्रतीक्ष्यतम येनासौ भवद्भिरिति कीर्तितः।।२७९।।
सुमाली न्यगदच्चैवं साधु पृष्टं दशानन। चरितं हरिषेणस्य शृणु पापविदारणम्।।२८०।।
काम्पिल्यनगरे राजा नाम्ना मृगपतिध्वजः। बभूव यशसा व्याप्तसमस्तभुवनो महान्।।२८१।।
महिषी तस्य वप्राह्वा प्रमदागुणशालिनी। अभूत् सौभाग्यतः प्राप्ता पत्नीशतललामताम्।।२८२।।
हरिषेणः समुत्पन्नः स ताभ्यां परमोदयः। चतुःषष्ट्या शुभैर्युक्तो लक्षणैः क्षतदुष्कृतः।।२८३।।
वप्रया चान्यदा जैने मते भ्रमयितुं रथे। आष्टाह्निकमहानन्दे नगरे धर्मशीलया।।२८४।।
महालक्ष्मीरिति ख्याता सौभाग्यमदविह्वला। अवृत्तमवदत्तस्याः सपत्नी दुर्विचेष्टिता।।२८५।।
पूर्वं ब्रह्मरथो यातु मदीयः पुरवर्त्मनि। भ्रमिष्यति ततः पश्चाद्वप्रया कारितो रथः।।२८६।।
इति श्रुत्वा ततो वप्रा कुलिशेनेव ताडिता। हृदये दुःखसंतप्ता प्रतिज्ञामकरोदिमाम्।।२८७।।
भ्रमिष्यति रथोऽयं मे प्रथमं नगरे यदि। पूर्ववत्पुनराहारं करिष्येऽतोऽन्यथा तु न।।२८८।।
इत्युक्त्वा च बबन्धासौ प्रतिज्ञालक्ष्मवेणिकाम्। व्यापाररहितावस्थाशोकम्लानास्यपङ्कजा।।२८९।।
ततः काम्पिल्यमागत्य युक्तश्चक्रधरश्रिया। द्वात्रिंशता नरेन्द्राणां सहस्राणां समन्वितः।।३९४।।
शिरसा मुकुटन्यस्तमणिप्रकरभासिना। ननाम चरणौ मातुर्विनीतो रचिताञ्जलिः।।३९५।।
ततस्तं तद्विधं दृष्ट्वा पुत्रं वप्रा दशानन। संभूता न स्वगात्रेषु तोषाश्रुव्याप्तलोचना।।३९६।।
ततो भ्रामयता तेन सूर्यवर्णान् महारथान्। काम्पिल्यनगरे मातुः कृतं सफलमीप्सितम्।।३९७।।
श्रमणश्रावकाणां च जातः परमसंमदः। बहवश्च परिप्राप्ताः शासनं जिनदेशितम्।।३९८।।
तेनामी कारिता भान्ति नानावर्णजिनालयाः। भूपर्वतनदीसङ्गपुरग्रामादिधून्नताः।।३९९।।
कृत्वा चिरमसौ राज्यं प्रव्रज्य सुमहामनाः। तपः कृत्वा परं प्राप्तस्त्रिलोकशिखरं विभुः।।४००।।

हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित जिनमंदिर बनवाये

अथानन्तर एक दिन विनय से जिसका शरीर झुक रहा था, ऐसा दशानन आकाश में बहुत ऊँचे चढ़कर अपने दादा सुमाली से आश्चर्यचकित हो पूछता है कि हे पूज्य! इधर इस पर्वत के शिखर पर सरोवर तो नहीं है पर कमलों का वन लहलहा रहा है सो इस महा आश्चर्य को आप देखें।।२७२-२७३।। यहाँ पृथ्वीतल पर पड़े रंग-बिरंगे बड़े-बड़े मेघ निश्चल होकर कैसे खड़े हैं ?।।२७४।। तब सुमाली ने 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर दशानन से कहा कि हे वत्स! न तो ये कमल हैं और न मेघ ही हैं।।२७५।। किन्तु सफेद पताकाएँ जिन पर छाया कर रही हैं तथा जिनमें हजारों प्रकार के तोरण बने हुए हैं ऐसे-ऐसे ये जिनमन्दिर पर्वत के शिखरों पर सुशोभित हो रहे हैं।।२७६।। **ये सब मन्दिर महापुरुष हरिषेण चक्रवर्ती के द्वारा बनवाये हुए हैं।** हे वत्स! तू इन्हें नमस्कार कर और क्षण-भर में अपने हृदय को पवित्र कर।।२७७।। तदनन्तर वैश्रवण का मानमर्दन

करने वाले दशानन ने वहीं खड़े रहकर जिनालयों को नमस्कार किया और आश्चर्यचकित हो सुमाली से पूछा कि पूज्यवर! हरिषेण का ऐसा क्या माहात्म्य था कि जिससे आपने उनका इस तरह कथन किया है ?।।२७८-२७९।। तब सुमाली ने कहा कि हे दशानन! तूने बहुत अच्छा प्रश्न किया। अब पाप को नष्ट करने वाला हरिषेण का चरित्र सुन।।२८०।। काम्पिल्य नगर में अपने यश के द्वारा समस्त संसार को व्याप्त करने वाला सिंहध्वज नाम का एक बड़ा राजा रहता था।।२८१।। उसकी वप्रा नाम की पटरानी थी जो स्त्रियों के योग्य गुणों से सुशोभित थी तथा अपने सौभाग्य के कारण सैकड़ों रानियों में आभूषणपना को प्राप्त थी।।२८२।। उन दोनों से परम अभ्युदय को धारण करने वाला हरिषेण नाम का पुत्र हुआ। वह पुत्र उत्तमोत्तम चौंसठ लक्षणों से युक्त था तथा पापों को नष्ट करने वाला था।।२८३।। किसी एक समय आष्टान्हिक महोत्सव आया, सो धर्मशील वप्रा रानी ने नगर में जिनेन्द्र भगवान् का रथ निकलवाना चाहा।।२८४।। राजा सिंहध्वज की महालक्ष्मी नामक दूसरी रानी थी जो कि सौभाग्य के गर्व से सदा विह्वल रहती थी। अनेक खोटी चेष्टाओं से भरी महालक्ष्मी वप्रा की सौत थी इसलिए उसने उसके विरुद्ध आवाज उठायी कि पहले मेरा ब्रह्मरथ नगर की गलियों में घूमेगा। उसके पीछे वप्रा रानी के द्वारा बनवाया हुआ जैनरथ घूम सकेगा।।२८५-२८६।। यह सुनकर वप्रा को इतना दुःख हुआ कि मानो उसके हृदय में वज्र की ही चोट लगी हो। दुःख से सन्तप्त होकर उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा यह रथ नगर में पहले घूमेगा तो मैं पूर्व की तरह पुनः आहार करूँगी अन्यथा नहीं।।२८७-२८८।। तदनन्तर चक्रवर्ती की लक्ष्मी से युक्त होकर वह हरिषेण पुत्र काम्पिल्यनगर आया। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसके साथ थे।।३९४।। उसने मुकुट में लगे मणियों के समूह से सुशोभित शिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर बड़ी विनय से माता के चरणों में नमस्कार किया।।३९५।। सुमाली दशानन से कहते हैं कि हे दशानन! उस समय उक्त प्रकार के हरिषेण पुत्र को देखकर वप्रा के हर्ष का पार नहीं रहा। वह अपने अंगों में नहीं समा सकी तथा हर्ष के आँसुओं से उसके दोनों नेत्र भर गये।।३९६।। तदनन्तर उसने सूर्य के समान तेजस्वी बड़े-बड़े रथ काम्पिल्यनगर में घुमाये और इस तरह अपनी माता का मनोरथ सफल किया।।३९७।। इस कार्य से मुनि और श्रावकों को परम हर्ष हुआ तथा बहुत से लोगों ने जिनधर्म धारण किया।।३९८।। **पृथिवी, पर्वत, नदियों के समागम स्थान, नगर तथा गाँव आदि में जो नाना रंग के ऊँचे-ऊँचे जिनालय शोभित हो रहे हैं वे सब उसी के बनवाये** हैं।।३९९।। उदार हृदय को धारण करने वाले हरिषेण ने चिरकाल तक राज्य कर दीक्षा ले ली और परम तपश्चरण कर तीन लोक का शिखर अर्थात् सिद्धालय प्राप्त कर लिया।।४००।।

(पद्मपुराण भाग-१, पर्व-८, पृ. १८७, १८८, १९६)

२०. जिनागम नवनीत
श्री रामचन्द्रजी ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाये

तत्र वंशगिरौ राजन् रामेण जगदिन्दुना। निर्मापितानि चैत्यानि जिनेशानां सहस्त्रशः।।२७।।
महावष्टम्भसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गताः। गवाक्षहर्म्यवलभीप्रभृत्याकारशोभिताः।।२८।।
सतोरणमहाद्वाराः सशालाः परिखान्विताः। सितचारुपताकाढ्या बृहद्घण्टारवाचिताः।।२९।।
मृदङ्गवंशमुरजसंगीतोत्तमनिस्वनाः। झर्झरैरानकैः शङ्खभेरीभिश्च महारवाः।।३०।।
सततारब्धनिःशेषरम्यवस्तुमहोत्सवाः। विरेजुस्तत्र रामीया जिनप्रासादपङ्क्तयः।।३१।।
रेजिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृताः। पञ्चवर्णा जिनेन्द्राणां सर्वलक्षणभूषिताः।।३२।।

उपजातिवृत्तम्

एषऽपि तुङ्गः परमो महीध्रः श्रीमन्निवतम्बो बहुधानुसानुः।
विलम्पतीभिः कुकुभां समूहं भासाचकाज्जैनगृहावलीभिः।।४४।।
रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेश्मानि विधापितानि।
निर्नष्टवंशाद्रिवचाः स तस्माद्रविप्रभो रामगिरिः प्रसिद्धः।।४५।।

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! उस वंशगिरि पर जगत् के चन्द्रस्वरूप **राम ने जिनेन्द्र भगवान् की हजारों प्रतिमाएँ बनवायीं** थीं।।२७।। तथा जिनमें महामजबूत खम्भे लगवाये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो झरोखे, महलों तथा छपरी आदि की रचना से शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणों से युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखा से सहित थे, सफेद और सुन्दर पताकाओं से युक्त थे, बड़े-बड़े घण्टाओं के शब्द से व्याप्त थे, जिनमें मृदंग, बाँसुरी और मुरज का संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो झाँझों, नगाड़ों, शंखों और भेरियों के शब्द से अत्यन्त शब्दायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओं के द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे राम के बनवाये जिनमन्दिरों की पंक्तियां उस पर्वत पर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं।।२८-३१।। **उन मन्दिरों में सब लोगों के द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकार के लक्षणों से युक्त पंचवर्ण की जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं।।३२।।**

इधर जिसकी मेखलाएँ शोभा से सम्पन्न थीं तथा जिसके शिखर अनेक धातुओं से युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओं के समूह को लिप्त करने वाली जिनमन्दिरों की पंक्ति से अतिशय सुशोभित होता था।।४४।। चूँकि उस पर्वत पर रामचन्द्र ने जिनेन्द्र भगवान् के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्य के समान प्रभा को धारण करने वाला वह पर्वत 'रामगिरि' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।।४५।।

(पद्मपुराण, भाग-२, पर्व ४०, पृ. १९६ से १९८ तक)

२१. जिनागम नवनीत
धाराशिव नगर में 1008 खम्भों का जिनमंदिर

आराधना कथाकोष संस्कृत में करकण्डु राजा की कथा में १००८ खम्भों वाले जिनमंदिर का वर्णन आया है—

मार्गे तेरपुराभ्यर्णे संस्थितः सैन्यसंयुतः। तदागत्य च भिल्लाभ्यां तं प्रणम्य प्रजल्पितम्।।१४३।।
अस्मात्तेरपुरादस्ति दक्षिणस्यां दिशि प्रभो। गव्यूतिकान्तरे चारु पर्वतस्योपरिस्थितम्।।१४४।।
धाराशिवपुरं चास्ति सहस्त्रस्तंभसंभवम्। श्रीमज्जिनेन्द्रदेवस्य भवनं सुमनोहरम्।।१४५।।
तस्योपरि तथा शैल-मस्तके संप्रवर्त्तते। वल्मीकं तच्च सद्धस्ती शुभो भक्त्या दिनं प्रति।।१४६।।
शुण्डादण्डेन सत्तोयं गृहीत्वा कमलं सुधीः। समागत्य परीत्योच्चैः समभ्यर्च्य नमत्यलम्।।१४७।।
इत्याकर्ण्य प्रहर्षेण ताभ्यां दत्वोचितं द्रुतम्। करकण्डुर्महाराजो जिनभक्तिपरायणः।।१४८।।
गत्वा तत्र समालोक्य जिनेन्द्रभवनं शुभम्। समभ्यर्च्य जिनाधीशान्स्वर्गमोक्षसुखप्रदान्।।१४९।।
स्तुतिं चक्रे च सद्भक्त्या शर्मकोटिविधायिनीम्। प्रमादो नैव सद्दृष्टे-र्धर्मकर्मणि सर्वदा।।१५०।।
ततो दृष्ट्वा च वाल्मीकिं पूजयन्तं महाद्विपम्। अत्रास्ति कारणं किंचिच्चेतसि संविचार्य च।।१५१।।
तद्वल्मीकं समुन्मूल्य मंजूषां तत्र संस्थिताम्। दृष्ट्वोदघाट्य प्रयत्नेन वीक्ष्य रत्नमयीं च सः।।१५२।।
श्रीमत्पार्श्वजिनेन्द्रस्य प्रतिमां पापनाशिनीम्। सन्तुष्टो मानसे चारु-सद्दृष्टिर्धर्मवत्सलः।।१५३।।
तस्याश्च भवनं चारु कारयित्वा सुभक्तितः। सुधीरग्गलदेवाख्यं स्थापयामास तत्र ताम्।।१५४।।

(आराधना कथाकोष-संस्कृत-पृ. ४४९)

रास्ते में तेरपुर के पास राजा करकण्डु का पड़ाव पड़ा। इसी समय कुछ भीलों ने आकर नम्र मस्तक से इनसे प्रार्थना की -राजाधिराज, हमारे तेरपुर से दो-कोस दूरी पर एक पर्वत है। उस पर एक छोटा सा धाराशिव नाम का गाँव बसा हुआ है। इस गाँव में एक बहुत बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है। **उसमें विशेषता यह है कि उसमें कोई एक हजार खम्भे हैं।** वह बड़ा सुन्दर है। उसे आप देखने को चलें। इसके सिवा पर्वत पर एक यह आश्चर्य की बात है कि वहाँ एक बाँवी है। एक हाथी रोज अपनी सूँड में थोड़ा सा पानी और एक कमल का फूल लिये वहाँ आता है और उस बाँवी की परिक्रमा देकर वह पानी और फूल उस पर चढ़ा देता है। इसके बाद वह उसे अपना मस्तक नवाकर चला जाता है। उसका यह प्रतिदिन का नियम है। महाराज, नहीं जान पड़ता कि इसका क्या कारण है। भीलों द्वारा यह शुभ समाचार सुनकर करकण्डु राजा बहुत प्रसन्न हुआ। इस समाचार को लाने वाले भीलों को उचित इनाम देकर वह स्वयं सबको साथ लिये उस कौतुकमय स्थान को देखने गया। पहले उसने जिनमंदिर जाकर भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा

की, स्तुति की। सच है, धर्मात्मा पुरुष धर्म के कामों में कभी प्रमाद-आलस नहीं करते। बाद में वह उस बाँवी की जगह गया। उसने वहाँ भीलों के कहे माफिक हाथी को उस बाँवी की पूजा करते पाया। देखकर उसे बड़ा अचम्भा हुआ उसने सोचा कि इसका कुछ न कुछ कारण होना चाहिए। नहीं तो इस पशु में ऐसा भक्ति भाव नहीं देखा जाता। यह विचार कर उसने उस बाँवी को खुदवाया। उसमें से एक सन्दूक निकली। उसने उसे खोलकर देखा। सन्दूक में एक रत्नमयी पार्श्वनाथ भगवान की पवित्र प्रतिमा थी। उसे देखकर धर्मप्रेमी करकण्डु राजा को अतिशय प्रसन्नता हुई उसने तब वहाँ 'अग्गलदेव' नाम का एक विशाल जिनमन्दिर बनवाकर उसमें बड़े उत्सव के साथ उस प्रतिमा को विराजमान किया।

(आराधना कथाकोष हिन्दी-पृ. ४८४, ४८५)

२२. जिनागम नवनीत
लंका में रावण के महल में विशाल स्वर्णमयी 1000 खंभों का शांतिनाथ मंदिर था

अथानन्तर समागमरूपी सूर्य से जिसका मुखकमल खिल उठा था ऐसी सीता का हाथ अपने हाथ से पकड़ श्रीराम उठे और इच्छानुकूल चलने वाले ऐरावत के समान हाथी पर बैठकर स्वयं उस पर आरूढ़ हुए। महातेजस्वी तथा सम्पूर्ण कान्ति को धारण करने वाले श्रीराम हिलते हुए घंटों से मनोहर हाथीरूपी मेघ पर सीतारूपी रोहिणी के साथ बैठे हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे।।१-३।।

अतिशय निपुण थे ऐसे श्रीराम, सूर्य के विमान समान जो रावण का भवन था उसमें जाकर प्रविष्ट हुए। वहां उन्होंने भवन के मध्य में स्थित श्री शांतिनाथ भगवान् का परम सुन्दर मन्दिर देखा। वह मन्दिर योग्य विस्तार और ऊँचाई से सहित था, **स्वर्ण के हजार खम्भों से निर्मित था,** विशाल कान्ति का धारक था, उसकी दीवालों के प्रदेश नाना प्रकार के रत्नों से युक्त थे, वह मन को आनन्द देने वाला था, विदेह क्षेत्र के मध्य में स्थित मेरुपर्वत के समान था, क्षीर समुद्र के फेन पटल के समान कान्ति वाला था, नेत्रों को बांधने वाला था, रुणझुण करने वाली किङ्किणियों के समूह एवं बड़ी-बड़ी ध्वजाओं से सुशोभित था, मनोज्ञरूप से युक्त था तथा उसका वर्णन करना अशक्य था।।६-१०।।

(पद्मपुराण भाग-३, पृ. ९३)

२३. जिनागम नवनीत
श्रीरामचन्द्र जी ने लंका में स्वर्णमयी हजार खंभों वाले पद्मप्रभ मंदिर के दर्शन किये

इस प्रकार सुन्दरी स्त्रियों के मुख-कमलों को विकसित करते हुए वे सब विभीषण के राजभवन में पहुँचे।।६०।। उस समय राम, लक्ष्मण आदि की शुभ-लक्षणों से युक्त जो विभूति थी वह देवों के लिए भी आश्चर्य उत्पन्न करने वाली थी।।६१।। अथानन्तर हाथी से उतरकर, जिनका रत्नों के अर्घ्य आदि से सत्कार किया गया था ऐसे सीता सहित राम लक्ष्मण ने विभीषण के सुन्दर भवन में प्रवेश किया।।६२।।

विभीषण के विशाल भवन के मध्य में श्री श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र का वह मन्दिर था जो रत्नमयी तोरणों से सहित था, स्वर्ण के समान देदीप्यमान था, समीप में स्थित महलों के समूह से मनोहर था, शेष नामक पर्वत के मध्य में स्थित था, प्रेम की उपमा को प्राप्त था, **स्वर्णमयी हजार खम्भों से युक्त था,** उत्तम देदीप्यमान था, योग्य लम्बाई और विस्तार से सहित था, नाना मणियों के समूह से शोभित था, चन्द्रमा के समान चमकती हुई नाना प्रकार की बल्लभियों से युक्त था, झरोखों के समीप लटकती हुई मोतियों की जाली से सुशोभित था, अनेक अद्‌भुत रचनाओं से युक्त प्रतिसर आदि विविध प्रदेशों से सुन्दर था और पाप को नष्ट करने वाला था।।६३-६७।। इस प्रकार के उस मन्दिर में श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र की पद्मराग मणि निर्मित वह अनुपम प्रतिमा विराजमान थी। जो अपनी प्रभा से मणिमय भूमि में कमल-समूह की शोभा प्रकट कर रही थी। सब लोग उस प्रतिमा की स्तुति-वन्दना कर यथायोग्य बैठ गये।।६८-६९।।

(पद्मपुराण भाग-३ पृ. ९७)

२४. जिनागम नवनीत
आकाश में विजय देव के नगर में जिनमंदिर हैं।

विजयादिदुवाराणं पंचसया जोयणाणि वित्थारो।
पत्तेक्कं उच्छेहो सत्त सयाणिं च पण्णासा।।७३।।
जो ५००। ७५०।
दारोवरिमपुराणं रुंदा दो जोयणाणि पत्तेक्कं।
उच्छेहो चत्तारिं केई एवं परूवंति।।७४।।
२। ४। पाठान्तरम्।

एदेसिं दाराणं अहिवइदेवा हुवंति विंतरया।
जंणामा ते दारा तंणामा ते वि रक्खादो।।७५।।

एक्कपलिदोवमाऊ दसदंडसमाणतुंगवरदेहा।
दिब्वामलमउडधरा सहिदा देवीसहस्सेहिं।।७६।।

दारस्स उवरिदेसे विजयस्स पुरं हवेदि गयणम्मि।
बारससहस्सजोयणदीहं तस्सद्धविक्खं भं।।७७।।

चउगोउरसंजुत्ता तडवेदी तम्मि होदि कणयमई।
चरियट्टालयचारू दारोवरि जिणपुरेहिं रमयारा।।७८।।

विजयपुरम्मि विचित्ता पासादा विविहरयणकणयमया।
समचउरस्सा दीहा अणेयसंठाणसोहिल्ला।।७९।।

कुंदेंदुसंखधवला मरगयवण्णा सुवण्णसंकासा।
वरपउमरायसरिसा विचित्तवण्णंतरा पउरा।।८०।।

ओलग्गमंतभूसणअभिसेउप्पत्तिमेहुणादीणं।
सालाओ विसालाओ रयणमईओ विराजंति।।८१।।

विजयादिक द्वारों में से प्रत्येक का विस्तार पाँच सौ योजन और ऊँचाई सात सौ पचास योजन प्रमाण है।।७३।। विस्तार यो. ५००, उत्सेध ७५०।

द्वारों पर स्थित पुरों में से प्रत्येक का विस्तार दो योजन और ऊँचाई चार योजन मात्र है, ऐसा कितने ही आचार्य प्ररूपण करते हैं।।७४।। विस्तार २, उत्सेध ४ योजन।
।। पाठान्तर।।

इन द्वारों के अधिपति व्यन्तर देव हैं। द्वारों के जो नाम हैं, वे ही नाम रक्षा के निमित्त से इन देवों के भी हैं।।७५।। ये देव एक पल्योपम प्रमाण आयु के भोक्ता, दश धनुष प्रमाण उन्नत उत्तम शरीर वाले, दिव्य निर्मल मुकुट के धारक और हजारों देवियों से सहित हैं।।७६।। द्वार के ऊपर आकाश में बारह हजार योजन लंबा और इससे आधे विस्तार वाला विजयदेव का नगर है। ७७।। लंबाई १२०००; विस्तार ६००० योजन। उस विजयपुर में चार गोपुरों से संयुक्त सुवर्णमयी तटवेदी है, जो मार्ग व अट्टालिकाओं से सुन्दर और **द्वारों के ऊपर स्थित जिनपुरों से रमणीय है।**।७८।। विजयपुर में नाना प्रकार के रत्नों और सुवर्ण से निर्मित, समचतुरस्र दीर्घ और अनेक आकृतियों से शोभायमान विचित्र प्रासाद हैं।।७९।। वे प्रासाद कुन्दपुष्प, चन्द्रमा एवं शंख के समान धवल, मरकत मणियों जैसे वर्ण वाले, सुवर्ण के सदृश, उत्तम पद्मरागमणियों के समान व बहुत से अन्य विचित्र

वर्णों वाले हैं।।८०।। उपर्युक्त प्रासादों में ओलगशाला, मंत्रशाला, भूषणशाला, अभिषेकशाला, उत्पत्तिशाला और मैथुनशाला इत्यादिक रत्नमयी विशाल शालायें शोभायमान हैं।।८१।।

(तिलोयपण्णत्ति-अधिकार-४.पृ.१५१)

२५. जिनागम नवनीत
श्रावकों की त्रेपन क्रियायें श्रीकुंदकुंददेव ने वर्णित की है।

गुणवयतवसमपडिमा, दाणं जलगालणं च अणत्थमियं।
दंसणणाणचरित्तं किरिया तेवण्ण सावया भणिया।।१३७।।

८ मूलगुण, १२ व्रत, १२ तप, १ समता, ११ प्रतिमा, ४ प्रकार का दान, १ जलगालन, १ रात्रि भोजन त्याग, ३ दर्शन, ज्ञान और चारित्र इस प्रकार श्रावक की त्रेपन क्रियाएं हैं। ८ + १२ + १२ + १ + ११ + ४ + १ + १ + ३ = ५३ ।

(रयणसार गा. १३७)

२६. जिनागम नवनीत
बावड़ी के जल में सात भव दिख जाते हैं

उववणवाविजलेणं सित्ता पेच्छंति एक्कभवजाइं।
तस्स णिरिक्खणमेत्ते सत्तभवातीदभाविजादीओ।।८०८।।

उपवन की वापिकाओं के जल से अभिषिक्त जनसमूह एक भवजाति को देखते हैं और उसके निरीक्षणमात्र के होने पर अर्थात् वापी के जल में निरीक्षण करने पर सात अतीत व अनागत भवजातियों को देखतें हैं।।८०८।।

(तिलोयपण्णत्ति, पृ. २४८)

२७. जिनागम नवनीत
एक चैत्यवृक्ष के चार मानस्तंभ हैं।

सालत्तयपरिअरिया पीढत्तयउवरि माणथंभा य।
चत्तारो चत्तारो एक्केक्के चेत्तरुक्खम्मि।।८०९।।

एक-एक चैत्यवृक्ष के आश्रित तीन कोटों से वेष्टित व तीन पीठों के ऊपर चार-चार मानस्तम्भ होते हैं।।८०९।।

(तिलोयपण्णत्ति पृ. २४८)

२८. जिनागम नवनीत

केवलज्ञान वृक्ष ही अशोक वृक्ष है।

जेसिं तरूण मूले उप्पण्णं जाण केवलं णाणं।
उसहप्पहुदिजिणाणं ते चिय असोयरुक्ख त्ति।।११५।।

ऋषभादि तीर्थंकरों को जिन वृक्षों के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वे ही अशोक वृक्ष हैं।।११५।।

२४ तीर्थंकरों के अशोक वृक्ष के नाम

णग्गोहसत्तपण्णं सालं सरलं पियंगु तं चेव।
सिरिसं णागतरू वि य अक्खा धूली पलास तेंदूवं।।११६।।
पाडलजंबू पिप्पलदहिवण्णो णंदितिलयचूदा य।
कंकल्लिचंपबउलं मेसयसिंगं धवं सालं।।११७।।
सोहंति असोयतरू पल्लवकुसुमाणदाहि साहाहिं।
लंबंतमालदामा घंटाजालादिरमणिज्जा।।११८।।

न्यग्रोध, सप्तपर्ण, शाल, सरल, प्रियंगु, फिर वही (प्रियंगु), शिरीष, नागवृक्ष, अक्ष(बहेड़ा), धूली (मालिवृक्ष), पलाश, तेंदू, पाटल, पीपल, दधिपर्ण, नन्दी, तिलक, आम्र, कंकेलि (अशोक), चम्पक, बकुल, मेषशृङ्ग, धव और शाल, ये अशोकवृक्ष लटकती हुई मालाओं से युक्त और घंटासमूहादिक से रमणीय होते हुए पल्लव एवं पुष्पों से झुकी हुई शाखाओं से शोभायमान होते हैं।।९१६-९१८।।

(तिलोयपण्णत्ति पृ. २६४)

२९. जिनागम नवनीत

24 तीर्थंकरों के समय में 24 कामदेव

कालेसु जिणवराणं चउवीसाणं हवंति चउवीसा।
ते बाहुबलिप्पमुहा कंदप्पा णिरुवमायारा।।१४७२।।

चौबीस तीर्थंकरों के समयों में अनुपम आकृति के धारक वे बाहुबलिप्रमुख चौबीस कामदेव होते हैं।।१४७२।। (तिलोयपण्णत्ति पृ. ३३७)

३०. जिनागम नवनीत

24 कामदेव के नाम

१. बाहुबली २. अमिततेज ३. श्रीधर ४. यशभद्र ५. प्रसेनजित ६. चन्द्रवर्ण ७. अग्निमुक्ति ८. सनत्कुमार (चक्रवर्ती) ९. वत्सराज १०. कनकप्रभ ११. सिद्धवर्ण १२. शान्तिनाथ (तीर्थंकर) १३. कुंथुनाथ (तीर्थंकर) १४. अरनाथ (तीर्थंकर) १५. विजयराजा १६. श्रीचन्द्र १७. राजानल १८. हनुमान जी १९. बलगज २०. वसुदेव २१. प्रद्युम्न २२. नागकुमार २३. श्रीपाल २४. जम्बूस्वामी।

(णमोकार ग्रंथ, पृ. ४०३)

३१. जिनागम नवनीत

तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि नियम से सिद्ध होते हैं।

तित्थयरा तग्गुरओ चक्कीबलकेसिरुद्दणारद्दा।
अंगजकुलयरपुरिसा भविया सिज्झंति णियमेणं।।१४७३।।

तीर्थंकर, उनके गुरुजन (माता-पिता), चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, रुद्र, नारद, कामदेव और कुलकर पुरुष, ये सब भव्य होते हुए नियम से सिद्ध होते हैं।।१४७३।।

पंचमकाल का प्रारंभ समय

णिव्वाणे वीरजिणे वासतये अट्ठमासपक्खेसु।
गलिदेसुं पंचमओ दुस्समकालो समल्लियदि।।१४७४।।

वीर भगवान् को निर्वाण होने के पश्चात् तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष के व्यतीत हो जाने पर दुष्षमाकाल (पंचम काल) प्रवेश करता है।।१४७४।।

(तिलोयपण्णत्ति अधिकार-४ पृ. ३३७)

३२. जिनागम नवनीत

हुंडावसर्पिणी के दोष से होने वाले कार्य

चक्किस विजयभंगो णिव्वुइगमणं च थोवजीवाणं।
चक्कधराउ दिजाणं हवेदि वंसस्स उप्पत्ती।।१६१८।।
दुस्समसुसमे काले अट्ठावण्णा सलायपुरिसा य।
णवमादिसोलसंतं सत्तसु तित्थेसु धम्मवोच्छेदो।।१६१९।।

एक्करस होंति रुद्दा कलहपिया णारदा य णवसंखा।
सत्तमतेवीसंतिमतित्थयराणं च उवसग्गो।।१६२०।।
तदियचदुपंचमेसुं कालेसुं परमधम्मणासयरा।
विविहकुदेवकुलिंगी दीसंते दुट्ठपाविट्ठा।।१६२१।।
चंडालसबरपाणप्पुलिंदणाहलचिलायपहुदिकुला।
दुस्समकाले कक्की उवकक्की होंति बादाला।।१६२२।।
अइवुट्ठिअणावुट्ठी भूवड्ढी वज्जअग्गिपमुहा य।
इय णाणाविहदोसा विचित्तभेदा हवंति पुढं।।१६२३।।

चक्रवर्ती का विजयभंग और थोड़े से जीवों का मोक्षगमन भी होता है। इसके अतिरिक्त चक्रवर्ती से की गयी द्विजों के वंश की (वर्ण की) उत्पत्ति भी होती है।।१६१८।।

दुष्षमसुषमाकाल में अट्ठावन ही शलाकापुरुष होते हैं और नौवें से सोलहवें तीर्थंकर तक सात तीर्थों में धर्म की व्युच्छित्ति होती है।।१६१९।। ग्यारह रुद्र और कलहप्रिय नौ नारद होते हैं तथा इसके अतिरिक्त सातवें, तेईसवें और अन्तिम तीर्थंकर के उपसर्ग भी होता है।।१६२०।। तृतीय, चतुर्थ व पंचम काल में उत्तम धर्म को नष्ट करने वाले विविध प्रकार के दुष्ट, पापिष्ट, कुदेव और कुलिंगी भी दिखने लगते हैं। तथा चाण्डाल, शबर, पाण (श्वपच), पुलिंद, लाहल और किरात इत्यादि जातियां उत्पन्न होती है तथा दुष्षमकाल में ब्यालीस कल्की व उपकल्की होते हैं।।१६२१-१६२२।।

अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूवृद्धि (भूकंप) और वज्राग्नि आदि का गिरना इत्यादि विचित्र भेदों को लिये हुए नाना प्रकार के दोष इस हुण्डावसर्पिणी काल में हुआ करते हैं।।१६२३।।

(तिलोयपण्णत्ति महाधिकार–४, पृ. ३५५)

३३. जिनागम नवनीत
अकृत्रिम जिनमंदिर के बावड़ी में जिनमंदिर

चउजोयणउच्छेहा उवरिं पीढस्स कणयवरखंभा।
विविहमणिणियरखचिदा चामरघंटापयारजुदा।।१९१२।।
सव्वेसुं थंभेसुं महाधया विविहवण्णरमणिज्जा।
णामेण महिंदधया छत्तत्तयसिहरसोहिल्ला।।१९१३।।
पुरदो महाधयाणं मकरप्पमुहेहिं मुक्कसलिलाओ।
चत्तारो वावीओ कमलुप्पलकुमुदछण्णाओ।।१९१४।।

पण्णासकोसउदया कमसो पणुवीस रुंददीहत्ता।
दस कोसा अवगाढा वावीओ वेदियादिजुत्ताओ।।१९१५।।

को ५० । १०० । गा १० ।

वावीणं बहुमज्झे चेट्ठदि एक्को जिणिंदपासादो।
विप्फुरिदरयणकिरणो किं बहुसो सो णिरुवमाणो।।१९१६।।
तत्तो दहाउ पुरदो पुव्वुत्तरदक्खिणेसु भागेसुं।
पासादा रयणमया देवाणं कीडणा होंति।।१९१७।।

पीठ के ऊपर विविध प्रकार के मणिसमूह से खचित और अनेक प्रकार के चमर व घंटाओं से युक्त चार योजन ऊंचे सुवर्णमय खम्भे हैं ।।१९१२।। सब खम्भों के ऊपर अनेक प्रकार के वर्णों से रमणीय और शिखररूप तीन छत्रों से सुशोभित महेन्द्र नामक महाध्वजायें हैं।।१९१३।। महाध्वजाओं के आगे मगर आदि जलजन्तुओं से रहित जलवाली और कमल, उत्पल व कुमुदों से व्याप्त चार वापिकाएँ हैं।।१९१४।। वेदिकादि से सहित वापिकायें प्रत्येक पचास कोस प्रमाण विस्तार से युक्त, इससे दुगुणी अर्थात् सौ कोस लम्बी और दश कोस गहरी हैं।।१९१५।। को. ५० । १०० । ग. १०।

वापियों के बहुमध्य भाग में प्रकाशमान रत्नकिरणों से सहित एक जिनेन्द्रप्रासाद स्थित है। बहुत कथन से क्या, वह जिनेन्द्रप्रासाद निरूपम है।।१९१६।। अनन्तर वापियों के आगे पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागों में देवों के रत्नमय क्रीड़ाभवन हैं।।१९१७।।

(तिलोयपण्णत्ति महाधिकार–४, पृ. ३९१)

३४. जिनागम नवनीत
पाण्डुकवन में मानस्तम्भों का वर्णन

तप्फलिहवीहिमज्झे वेरुलियमयाणि माणथंभाणिं।
वीहिं पडि पत्तेयं विचित्तरूवाणि रेहंति।।१९३१।।
चामरघंटाकिंकिणिकेतणपहुदीहिं उवरि संजुत्ता।
सोहंति माणथंभा चउवेदीदारतोरणेहिं जुदा।।१९३२।।
ताणं मूले उवरिं जिणिंदपडिमाओ चउदिसंतेसुं।
वररयणणिम्मिदाओ जयंतु जयथुणिदचरिदाओ।।१९३३।।

कप्पमहिं परिवेढिय साला वररयणणियरणिम्मविदा।
चेट्ठदि चरियट्टालयणाणाविहधयवडाडोवा।१९३४।।
चूलियदक्खिणभाए पच्छिमभायम्मि उत्तरविभागे।
एक्केक्कं जिणभवणं पुव्वम्हि व वण्णणेहिं जुदं।।१९३५।।
एवं संखेवेणं पंडुगवणवण्णणाओ भणिदाओ।
वित्थारवण्णणेसुं सक्को वि ण सक्कदे तस्स।।१९३६।।

उन स्फटिकमणिमय वीथियों के मध्य में से प्रत्येक वीथी के प्रति विचित्ररूप वाले वैडूर्यमणिमय मानस्तम्भ सुशोभित हैं।।१९३१।। चार वेदीद्वार और तोरणों से युक्त ये मानस्तम्भ ऊपर चँवर, घंटा, किंकिणी और ध्वजा इत्यादि से संयुक्त होते हुए शोभायमान होते हैं ।।१९३२।। इन मानस्तम्भों के नीचे और ऊपर चारों दिशाओं में विराजमान, उत्तम रत्नों से निर्मित और जग से कीर्तित चरित्र से संयुक्त **जिनेन्द्रप्रतिमाएँ** जयवन्त होवें।।१९३३।। मार्ग व अट्टालिकाओं से युक्त, नाना प्रकार की ध्वजा-पताकाओं के आटोप से सुशोभित और श्रेष्ठ रत्न समूह से निर्मित कोट इस कल्पमही को वेष्टित करके स्थित है।।१९३४।। चूलिका के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर भाग में भी **पूर्वदिशावर्ती जिनभवन के समान वर्णनों से संयुक्त एक-एक जिनभवन** हैं।।१९३५।। इस प्रकार यहां संक्षेप से पाण्डुकवन का वर्णन किया गया है । उसका विस्तार से वर्णन करने के लिये तो इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकता है।।१९३६।।

(तिलोयपण्णत्ति महाधिकार-४, पृ. ३९३)

३५. जिनागम नवनीत

भागीरथ महामुनि के पाद प्रक्षाल के क्षीरोदधि के जल से गंगानदी भागीरथी कहलाई है और तीर्थपने को प्राप्त हो गई है।

भागीरथोऽपि तान् गत्वा कृत्वा भक्त्या नमस्क्रियाम्।
धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रमादत्त श्रावकव्रतम्।।१३३।।
प्रकटीकृततन्मायो मणिकेतुश्च तान् मुनीन्।
क्षन्तव्यमित्युवाचैतान सगरादीन् सुहृद्वरः।।१३४।।
कोऽपराधस्तवेदं नस्त्वया प्रियमनुष्ठितम्।
हितं चेति प्रसन्नोक्त्या ते तदा तमसान्त्वयन्।।१३५।।

सोऽपि सन्तुष्य सिद्धार्थो देवो दिवमुपागमत्।
परार्थसाधनं प्रायो ज्यायसां परितुष्टये।।१३६।।
सर्वेऽते सुचिरं कृत्वा सत्तपो विधिवद् बुधाः।
शुक्लध्यानेन सम्मेदे सम्प्रापन् परमं पदम्।।१३७।।
निर्वाणगमनं श्रुत्वा तेषां निर्विण्णमानसः।
वरदत्ताय दत्त्वात्मराज्यलक्ष्मीं भागीरथः।।१३८।।
कैलाशपर्वते दीक्षां शिवगुप्तमहामुनेः।
आदाय प्रतिमायोगधार्यभूत्स्वर्धुनीतटे।।१३९।।
सुरेन्द्रेणास्य दुग्धाब्धिपयोभिरभिषेचनात्।
क्रमयोस्तत्प्रवाहस्य गङ्गायाःसङ्गमे सति।।१४०।।
तदाप्रभृति तीर्थत्वं गङ्गाप्यस्मिन्नुपागता।
कृत्वोत्कृष्टं तपो गङ्गातटेऽसौ निर्वृतिं गतः।।१४१।।

जब भागीरथ ने यह समाचार सुना तब वह भी उन मुनियों के पास गया और वहाँ उसने उन सबको भक्ति से नमस्कार कर जिनेद्रोक्त धर्म का स्वरूप सुना तथा श्रावक के व्रत ग्रहण किये ।।१३३।। अन्त में मित्रवर मणिकेतु ने उन सगर आदि मुनियों के समक्ष अपनी समस्त माया प्रकट कर दी और कहा कि आप लोग क्षमा कीजिये ।।१३४।। 'इसमें आपका अपराध ही क्या है ? यह तो आपने हमारा हित तथा प्रिय कार्य किया है' इस प्रकार के प्रसन्नता से भरे हुए शब्दों द्वारा उन सब मुनियों ने मणिकेतु देव को सान्त्वना दी ।।१३५।। जिसका कार्य सिद्ध हो गया है ऐसा देव भी सन्तुष्ट होकर स्वर्ग चला गया सो ठीक ही है क्योंकि अन्य पुरुषों के कार्य सिद्ध करने से ही प्रायः महापुरुषों को संतोष होता है ।।१३६।। वे सभी विद्वान् मुनिराज चिरकाल तक यथा-विधि तपश्चरण कर सम्मेद शैल पर पहुँचे और शुक्लध्यान के द्वारा परम पद को प्राप्त हुए ।।१३७।। उन सबका मोक्ष जाना सुनकर भगीरथ का मन निर्वेद से भर गया अतः उसने वरदत्त के लिए अपनी राज्यश्री सौंपकर कैलास पर्वत पर शिवगुप्त नामक महामुनि से दीक्षा ले ली तथा गङ्गा नदी के तट पर प्रतिमा योग धारणकर लिया।।१३८-१३९।। इन्द्र ने क्षीरसागर के जल से महामुनि भगीरथ के चरणों का अभिषेक किया जिसका प्रवाह गङ्गा में जाकर मिल गया। उसी समय से गङ्गा नदी भी इस लोक में तीर्थरूपता को प्राप्त हुई अर्थात् तीर्थ मानी जाने लगी। महामुनि भगीरथ गङ्गानदी के तट पर उत्कृष्ट तप कर वहीं से निर्वाण को प्राप्त हुए ।।१४०-१४१।।

(उत्तरपुराण पृ. १२)

३६. जिनागम नवनीत
मंदिरों पर श्वेत पताकायें थी

त्रिकूटशिखराधस्तान्महाप्राकार–गोपुराम्।
सन्ध्यामिव विलिम्पन्तीं छाययरुणया नभः।।१७५।।
कुन्दशुभ्रैः समुत्तुङ्गैर्वैजयन्त्युपशोभितैः।
मण्डितां चैत्यसंघातैः सप्राकारैःसतोरणैः।।१७६।।
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां प्रविश्य च जिनालयम्।
वन्दित्वा स्वोचितागारमध्युवास समङ्गलम्।।१७७।।

इस प्रकार समुद्र की शोभा देखते हुए मेघवाहन ने त्रिकूटाचल के शिखर के नीचे स्थित लंकापुरी में प्रवेश किया। वह लंका बहुत भारी प्राकार और गोपुरों से सुशोभित थी,अपनी लाल–कान्ति के द्वारा सन्ध्या के समान आकाश को लिप्त कर रही थी, **कुन्द के समान सफेद,ऊँचे पताकाओं से सुशोभित,कोट और तोरणों से युक्त जिनमन्दिरों से मण्डित थी।** लंकानगरी में प्रविष्ट हो सर्वप्रथम उसने जिनमन्दिर में जाकर जिनेन्द्रदेव की वन्दना की और तदनन्तर मंगलोपकरणों से युक्त अपने योग्य महल में निवास किया।।१७५–१७७।।

(पद्मपुराण भाग–१ पृ. ७९)

३७. जिनागम नवनीत
जब धर्म का ह्रास होने लगता है तब तीर्थंकर भगवान जन्म लेते हैं।

अनेकेऽत्र ततोऽतीते काले रत्नालयोपमे।
नाभेययुगविच्छेदे जाते नष्टसमुत्सवे।।२०४।।
अवतीर्य दिवो मूर्ध्नःकर्तुं कृतयुगं पुनः।
उद्भूतोऽस्मि हिताधायी जगतामजितो जिनः।।२०५।।
आचाराणां विघातेन कुदृष्टीनां च संपदा।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः।।२०६।।
ते तं प्राप्य पुनर्धर्मं जीवा बान्धवमुत्तमम्।
प्रपद्यन्ते पुनर्मार्गं सिद्धस्थानाभिगामिनः।।२०७।।

तदनन्तर बहुत काल व्यतीत हो जाने पर जब समुद्र के समान गम्भीर ऋषभदेव का युग–तीर्थ विच्छिन्न हो गया और धार्मिक उत्सव नष्ट हो गया तब सर्वार्थसिद्धि से चयकर फिर से कुतयुग की व्यवस्था करने के लिए जगत् का हित करने वाला मैं दूसरा

अजितनाथ तीर्थंकर उत्पन्न हुआ हूँ।।२०४–२०५।। जब आचार के विघात और मिथ्यादृष्टियों के वैभव से समीचीन धर्म ग्लानि को प्राप्त हो जाता है — प्रभावहीन होने लगता है तब तीर्थंकर उत्पन्न होकर उसका उद्योत करते हैं।।२०६।। संसार के प्राणी उत्कृष्ट बन्धुस्वरूप समीचीन धर्म को पुनः प्राप्त कर मोक्षमार्ग को प्राप्त होते हैं और मोक्ष स्थान की ओर गमन करने लगते हैं। अर्थात् विच्छिन्न मोक्षमार्ग फिर से चालू हो जाता है।।२०७।।

(पद्मपुराण भाग–१, पृ. ८१)

३८. जिनागम नवनीत
दशरथ के पिता राजा अनरण्य ने अपने छोटे पुत्र अनन्तरथ के साथ दीक्षा ली थी

दूतात्तत्प्रेषिताज् ज्ञात्वा तद्वृत्तान्तमशेषतः।
मासजाते श्रियं न्यस्य नार्यौ दशरथे भृतम्।।१६६।।
सकाशेऽभयसेनस्य निर्ग्रन्थस्य महात्मनः।
राजानन्तरथेनामा प्रवव्राजातिनिः स्पृहः।।१६७।।
अनरण्योऽगमन्मोक्षमनन्तस्यन्दनो महीम्।
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तो विजहार यथोचितम्।।१६८।।
अत्यन्तदुस्सहैर्योगी द्वाविंशतिपरीषहैः।
न क्षोभितस्ततोऽनन्तवीर्याख्यां स क्षितौ गतः।।१६९।।
वपुर्दशरथो लेभे नवयौवनभूषितम्।
शैलकूटमिवोत्तुङ्गं नानाकुसुमभूषितम्।।१७०।।

दीक्षा धारण करने के पहले उसने राजा अनरण्य के पास दूत भेजा था सो उससे सब समाचार जानकर राजा अनरण्य, जिसे उत्पन्न हुए एक माह ही हुआ था ऐसे दशरथ के लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर अभयसेन नामक निर्ग्रन्थ महात्मा के समीप ज्येष्ठ पुत्र अनन्तरथ के साथ अत्यन्त निःस्पृह हो दीक्षित हो गया।।१६६–१६७।। अनरण्य मुनि तो मोक्ष चले गये और अनन्तरथ मुनि सर्व प्रकार के परिग्रह से रहित हो यथायोग्य पृथ्वी पर विहार करने लगे ।।१६८।। अनन्तरथ मुनि अत्यन्त दुःसह बाईस परिषहों से क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए थे इसलिए पृथिवी पर 'अनन्तवीर्य' इस नाम को प्राप्त हुए ।।१६९।। अथानन्तर राजा दशरथ ने नवयौवन से सुशोभित तथा नाना प्रकार के फूलों से सुभूषित पहाड़ के शिखर के समान ऊँचा शरीर प्राप्त किया ।।१७०।।

(पद्मपुराण भाग–१ पृ. ४७०)

३९. जिनागम नवनीत

विवर्ध्दन कुमार आदि चक्रवर्ती भरत के 923 पुत्र थें। ये निगोद से निकलकर इन्द्रगोप हुये पुनः भरत चक्रवर्ती के हाथी के पैर के नीचे मरकर मनुष्य हुये हैं।

अयं तु विशेषः-नित्यनिगोदजीवान् विहाय पञ्चप्रकारसंसारव्याख्यानं ज्ञातव्यम् कस्मादिति चेत्-नित्यनिगोदजीवानां कालत्रयेऽपि त्रसत्वं नास्तीति। तथा चोक्तं— ''अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो। भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति।१।'' अनुपममद्वितीयमनादिमिथ्यादृशोऽपि भरतपुत्रास्त्रयोविंशत्यधिकनवशत-परिमाणास्ते च नित्यनिगोदवासिनः क्षपितकर्माण इन्द्रगोपाः संजातास्तेषां च पुञ्जीभूतानामुपरि भरतहस्तिना पादो दत्तस्ततस्ते मृत्वादि वर्द्धनकुमारादयो भरतपुत्रा जातास्ते च केनचिदपि सह न वदन्ति। ततो भरतेन समवसरणे भगवान् पृष्टो,भगवता च प्राक्तनं वृत्तान्तं कथितम्। तच्छ्रुत्वा ते तपो गृहीत्वा क्षणस्तोककालेन मोक्षं गताः आचाराराधनाटिप्पणे कथितमास्ते।इति संसारानुपेक्षा गता।

यहां विशेष यह है—कि नित्य निगोद के जीवों को छोड़कर,पंच प्रकार के संसार का व्याख्यान जानना चाहिये। यानी-नित्य-निगोदी जीव इस पंच प्रकार के संसार में परिभ्रमण नहीं करते । क्योंकि-नित्य निगोदवर्ती जीवों को तीन काल में भी त्रसपर्याय नहीं मिलती। सो ही कहा-''ऐसे अनंत जीव हैं कि जिन्होंने त्रसपर्याय को प्राप्त ही नहीं किया और जो भाव-कलंको (अशुभपरिणामों) से भरपूर हैं, जिससे वे निगोद के निवास को नहीं छोड़ते''(गोम्मटसार जीवकांड । १९६।) यह वृत्तान्त अनुपम और अद्वितीय है कि नित्य निगोदवासी अनादि मिथ्यादृष्टि नौ सौ तेईस (९२३) जीव कर्मों की निर्जरा होने से इन्द्रगोप (मखमली लाल कीड़े) हुए, सो उन सबके ढेर पर भरत के हाथी ने पैर रख दिया इससे वे मरकर, भरत के वर्द्धनकुमार आदि पुत्र हुए। वे पुत्र किसी के भी साथ नहीं बोलते थे, इसलिये भरत ने समवसरण में भगवान् से पूछा, तो भगवान् ने उन पुत्रों का पुराना सब वृत्तान्त कहा। उसको सुनकर उन सब वर्द्धनकुमारादि ने तप ग्रहण किया और बहुत थोड़े काल में मोक्ष चले गये।'' यह कथा आचाराधना की टिप्पणी में कही गई है। इस प्रकार ''संसार अनुप्रेक्षा का''व्याख्यान हुआ।

(वृहद् द्रव्यसंग्रह पृ. १०६)

४०. जिनागम नवनीत

भरत चक्रवती द्वारा बनवाए गए जिनमंदिरों का राजा दशरथ ने जीर्णोद्धार कराया है।

ये भरताद्यैर्नृपतिभिरुद्धाः कारितपूर्वा जिनवरवासाः।
भङ्गमुपेतान् क्वचिदपि रम्यान् सोऽनयदेतानभिनवभावान्।।१७९।।
इन्द्रनुतानां स्वयमपि रम्यान् तीर्थकराणां परमनिवासान्।
रत्नसमूहैः स्फुरदुरुमासः संततपूजामघटयदेषः।।१८०।।

भरतादि राजाओं ने जो पहले जिनेन्द्र भगवान् के उत्तम मन्दिर बनवाये थे वे यदि कहीं भग्नावस्था को प्राप्त हुए थे तो उन रमणीय मन्दिरों को राजा दशरथ ने मरम्मत कराकर पुनःनवीनता प्राप्त करायी थी।।१७९।। यही नहीं,उसने स्वयं भी ऐसे जिनमन्दिर बनवाये थे जिनकी कि इन्द्र स्वयं स्तुति करता था तथा रत्नों के समूह से जिनकी विशाल कान्ति स्फुरायमान हो रही थी।।१८०।।

(पद्मपुराण भाग–१ पृ. ४७१)

४१. जिनागम नवनीत

चक्रवर्ती हरिषेण ने पर्वतों पर जो मंदिर बनवाये थे, उनमें श्वेत पताकायें लहरा रही थीं।

नमःसिद्धेभ्य इत्यक्त्वा सुमाली तमथागदत्।
नामूनि शतपत्राणि न चैते वत्स तोयदाः।।२७५।।
सितकेतुकृतच्छायाः सहस्राकारतोरणाः।
शृङ्गेषु पर्वतस्यामी विराजन्ते जिनालयाः।।२७६।।
कारिता हरिषेणेन सज्जनेन महात्मना।
एतान् वत्स नमस्य त्वं भव पूतमनाःक्षणात्।।२७७।।
इति श्रुत्वा ततो वप्रा कलिशेनेव ताडिता।
हृदये दुःखसंतप्ताप्रतिज्ञामकरोदिमाम्।।२८७।।

तब सुमाली ने 'नमःसिद्धेभ्यः' कहकर दशानन से कहा कि हे वत्स! न तो ये कमल हैं और न मेघ ही हैं।।२७५।। किन्तु **सफेद पताकाएँ** जिन पर छाया कर रही हैं तथा जिनमें हजारों प्रकार के तोरण बने हुए हैं ऐसे–ऐसे ये जिनमन्दिर पर्वत के शिखरों पर सुशोभित हो रहे हैं।।२७६।। ये सब मन्दिर महापुरुष हरिषेण चक्रवर्ती के द्वारा

बनवाये हुए हैं। हे वत्स! तू इन्हें नमस्कार कर और क्षणभर में अपने हृदय को पवित्र कर।।२७७।।

(पद्मपुराण भाग–१, पृ. १८८)

४२. जिनागम नवनीत
भगवान महावीर का जन्म कुण्डलपुर में रात्रि में हुआ

आषाढजोण्हपक्खछट्ठीए कुंडपुरणगराहिव[१]–णाहवंस–सिद्धत्थणरिंदस्स तिसिलादेवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहिय–णवमासे अच्छिय चइत्त–सुक्सपक्ख–तेरसीए रत्तीए उत्तरफग्गुणीणक्खत्ते गब्भादो णिक्खंतो वड्ढमाणजिणिंदो।

आषाढ़ महीना के शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन कुंडपुर (कुंडलपुर)नगर के स्वामी नाथवंशी सिद्धार्थ नरेन्द्र की त्रिशला देवी के गर्भ में आकर और वहाँ नौ माह आठ दिन रहकर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन रात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के रहते हुए भगवान महावीर गर्भ से बाहर आये।

कुंडपुरपुरवरिस्सरसिद्धत्थक्खत्तियस्स णाहकुले।
तिसलाए देवीए देवीसदसेवमाणाए।।२३।।
अच्छिता णवमासे अट्ठ य दिवसे चइत्त-सियपक्खे।
तेरसिए रत्तीए जादुत्तरफग्गुणीए दु।।२४।।

कुंडपुर नगर के स्वामी सिद्धार्थ क्षत्रिय के घर, नाथकुल में, सैकड़ों देवियों से सेवमान त्रिसला देवी के गर्भ में आया और वहाँ नौ माह आठ दिन रहकर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की रात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के रहते हुए भगवान का जन्म हुआ।

(जयधवला सहित कषाय पाहुड़ पुस्तक–१ पृ. ७६–७७, ७८)

४३. जिनागम नवनीत
भगवान महावीर ने देवकृत दिव्य भोगों का अनुभव किया

मणुवत्तणसुहमतुलं देवकयं सेविऊण वासाइं।
अट्ठावीसं सत्त या मासे दिवसे य वारसयं।।२५।।

अट्ठाईस वर्ष, सात माह और बारह दिन तक देवों के द्वारा किए गए मनुष्य सम्बन्धी अनुपम सुख का सेवन किया।

(जयधवला पु. १, पृ. ७८)

१. कुंडलपुरणगराहिव.....। –ध. आ. प. ५३५।

४४. जिनागम नवनीत
भगवान महावीर विपुलाचल पर्वत पर पहुँचे

षट्षष्टिदिवसान् भूयो मौनेन विहरन विभुः।
आजगाम जगत्ख्यातं जिनो राजगृहं पुरम्।।६१।।
आरुरोह गिरिं तत्र विपुलं विपुलश्रियम्
प्रबोधार्थं स लोकानां भानुमानुदयं यथा।।६२।।

तदनन्तर छ्यासठ दिन तक मौन से विहार करते हुए श्री वर्धमान जिनेन्द्र जगत् प्रसिद्ध राजगृह नगर आये ।।६१।। वहाँ जिस प्रकार सूर्य उदयाचल पर आरूढ़ होता है उसी प्रकार वे लोगों को प्रतिबुद्ध करने के लिए विपुल लक्ष्मी के धारक विपुलाचल पर आरूढ़ हुए ।।६२।।

(हरिवंशपुराण, द्वितीयसर्ग, पृ. १७)

४५. जिनागम नवनीत
भगवान महावीर की दिव्यध्वनि श्रावण कृष्णा एकम् को खिरी

स दिव्यध्वनिना विश्वसंशयच्छेदिना जिनः।
दुन्दुभिध्वनिधीरेण योजनान्तरयायिना।।९०।।
श्रावणस्यासिते पक्षे नक्षत्रेऽभिजिति प्रभुः।
प्रतिपद्यह्नि पूवाह्णे शासनार्थमुदाहरत्।।९१।।

तदनन्तर श्रीवर्धमान प्रभु ने श्रावण मास के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के प्रातःकाल के समय अभिजित नक्षत्र में समस्त संशयों को छेदने वाले, दुन्दुभि के शब्द के समान गम्भीर तथा एक योजन तक फैलने वाली दिव्यध्वनि के द्वारा शासन की परम्परा चलाने के लिए उपदेश दिया।।९०–९१।।

(हरिवंशपुराण, सर्ग–२, पृ. १९)

४६. जिनागम नवनीत
इन्द्र ने सर्वप्रथम भगवान का ऋषभदेव नाम रखा

ततस्तमृषभं नाम्ना प्रधान पुरुषं सुराः।
युगाद्यमभिधायेत्थं शक्राद्याः स्तोतुमुद्यताः।।१९६।।

तदनन्तर युग के आदि में हुए उन प्रधान पुरुष का ऋषभदेव नाम रखकर इन्द्र

आदि देव उनकी इस प्रकार स्तुति करने के लिए तत्पर हुए ।।१९६।।

(हरिवंशपुराण सर्ग–८, पृ. १६१)

४७. जिनागम नवनीत

24 तीर्थंकरों के प्रथम पारणा के नगर

श्री हस्तिनापुरं रम्यमयोध्या नगरी शुभा।
श्रावस्ती च विनीता च पुरं विजयपूर्वकम्।।२३९।।
पुरं मङ्गलकं नाम्ना पाटलीखण्डसंज्ञकम्।
पद्मखण्डपुरं कान्तं तथा श्वेतपुरं परम्।।२४०।।
अरिष्टपुरमिष्टं तु सिद्धार्थपुरमप्यतः।
महापुरमतो नाम्ना स्फुटं धान्यवटं पुरम्।।२४१।।
वर्धमानपुरं ख्यातं पुरं सौमनसाह्वयम्।
मन्दरं हास्तिनपुरं तथा चक्रपुरं मतम् ।।२४२।।
मिथिला राजगृहकं पुरं वीरपुरं तथा।
पुरी द्वारवती काम्यकृतं कुण्डपुरं पुरम्।।२४३।।
चतुर्विंशतिसंख्यानां संख्यातानि यथाक्रमम्।
जिनानां वृषभादीनां पारणानगराणि तु।।२४४।।

१. श्रीसुन्दर हस्तिनापुर, २.शुभअयोध्या, ३.श्रावस्ती, ४.विनीता, ५. विजयपुर, ६. मंगलपुर, ७.पाटलीखण्ड, ८.पद्मखण्डपुर, ९. श्वेतपुर, १०. अरिष्टपुर, ११.सिद्धार्थपुर १२.महापुर, १३.धान्यवटपुर, १४. वर्धमानपुर, १५.सोमनसपुर १६. मन्दरपुर, १७.हस्तिनापुर, १८. चक्रपुर, १९ मिथिला, २०.राजगृह, २१. वीरपुर, २२.द्वारवती २३.काम्यकृति और २४. कुण्डपुर ये यथाक्रम से वृषभ आदि चौबीस तीर्थंकरों के प्रथम पारणा के नगर प्रसिद्ध हैं ।।२३९–२४४।।

(हरिवंशपुराण, षष्टितमः सर्गः, पृ. ७२४)

४८. जिनागम नवनीत

24 तीर्थंकरों के प्रथम आहार दाता के नाम

स श्रेयान् ब्रह्मदत्तश्च सुरेन्द्र इव संपदा।
राजा सुरेन्द्रदत्तोऽन्य इन्द्रदत्तश्च पद्मकः।।२४५।।

सोमदत्तो महादत्तःसोमदेवस्य पुष्पकः।
पुनर्वसुःसुनन्दश्च जयश्चापि विशाखकः।।२४६।।
धर्मसिंहः सुमित्रश्च धर्ममित्रोऽपराजितः।
नन्दिषेणश्च वृषभदत्तो दत्तश्च सन्नयः।।२४७।।
वरदत्तश्च नृपतिर्धन्यश्च वकुलस्तथा।
पारणासु जिनेन्द्रेभ्यो दायकाश्च त्वमी स्मृताः।।२४८।।

१. राजा श्रेयांस, २. ब्रह्मदत्त, ३. सम्पत्ति के द्वारा सुरेन्द्र की समानता करने वाला राजा सुरेन्द्रदत्त, ४. इन्द्रदत्त, ५.पद्मक, ६. सोमदत्त, ७. महादत्त, ८. सोमदेव, ९.पुष्पक, १०. पुनर्वसु, ११. सुनन्द, १२. जय, १३.विशाख, १४. धर्मसिंह, १५.सुमित्र, १६.धर्ममित्र,१७.अपराजित, १८. नन्दिषेण, १९. वृषभदत्त, २०.उत्तमनीति का धारक दत्त, २१ वरदत्त, २२. नृपति, २३.धन्य और २४ बकुल ये वृषभादि तीर्थंकरों को प्रथम पारणाओं के समय दान देने वाले स्मरण किये गये हैं ।।२४५–२४८

(हरिवंशपुराण,सर्ग–६०, पृ०–२४४)

४९. जिनागम नवनीत

भगवान महावीर का प्रथम आहार स्थान

अथ भट्टारकोप्यस्मादगात्कायस्थितिं प्रति।
कूलग्रामपुरीं श्रीमान् व्योमगामिपुरोपमम्।।३१८।।

अथानन्तर पारणा के दिन वे भट्टारक महावीरस्वामी आहार के लिए वन से निकले और विद्याधरों के नगर के समान सुशोभित कूलग्राम नाम की नगरी में पहुँचे।

(उत्तरपुराण, पर्व–७४, पृ. ४६४)

५०. जिनागम नवनीत

दान का फल

पुण्यमित्थमुपात्तं यत् तदभ्युदयलक्षणम्।
दत्वा दातुः फलं दत्ते प्राग् निःश्रेयसलक्षणम्।।२०१

दान का फल बताते हुए राजा श्रेयांस ने कहा कि इस तरह दान देने से जो पुण्य संचित होता है वह दाता के लिए पहले स्वर्गादिरूप फल देकर अन्त में मोक्षरूपी फल देता।।२०१।।

(हरिवंशपुराण, सर्ग, ९, पृ. १८२)

५१. जिनागम नवनीत
तीर्थंकरों के आहार के समय रत्नवृष्टि

सर्वेषामदिभिक्षासु दातारोऽपि जिनेशिनाम्।
सर्वासु वर्धमानस्य वसुधारानियोगतः।।२४९।।

अर्धत्रयोदशोत्कर्षाद्वसुधारासु कोट्यः।
तावन्त्येव सहस्राणि दशघ्नानि जघन्यतः।।२५०।।

समस्त तीर्थंकरों की आदि पारणाओं और वर्धमान स्वामी की सभी पारणाओं में नियम से रत्नवृष्टि हुआ करती थी वह रत्नवृष्टि उत्कृष्टता से साढ़े बारह करोड़ और और जघन्यरूप से साढ़े बारह लाख प्रमाण होती थी ।।२४९-२५०।।

(हरिवंशपुराण, सर्ग–६०, पृ. ७२४)

५२. जिनागम नवनीत
समस्त तीर्थंकरों को केवलज्ञान की प्राप्ति कितने उपवास के बाद हुई

वृषभमल्लीशपार्श्वानामष्टमेन चतुर्थतः।
जयाजस्य ययुःशेषाश्छद्मस्था हानिषष्ठतः।।२५३।।

वृषभनाथ, मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ को तेला के बाद,वासुपूज्य को एक उपवास के बाद और शेष तीर्थंकरों को बेला के बाद केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

(हरिवंशपुराण सर्ग–६०, पृ. ७२४)

५३. जिनागम नवनीत
24 तीर्थंकरों के केवलज्ञान उत्पत्ति के स्थान

ज्ञानाप्तिःपूर्वतालेन्त्या वृषभस्य सकटामुखे।
ऊर्जयन्ते गिरौ नेमेः पार्श्वस्याप्याश्रमान्तिके।।२५४।।

वीरस्य केवलोत्पाद ऋजुकुलासरित्तटे।
अन्येषां तु जिनेन्द्राणां स्वोद्यानेषु यथायथम्।।२५५।।

वृषभनाथ भगवान् को पूर्वताल नगर के शकटामुख वन में, नेमिनाथ को गिरिनार पर्वत पर, पार्श्वनाथ भगवान को आश्रम के समीप,महावीर भगवान को ऋजुकूला नदी के तट पर और शेष तीर्थंकरों को अपने-अपने नगर के उद्यान में ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था।

(हरिवंशपुराण, सर्ग–६०, पृ. ७२४, ४२५)

५४. जिनागम नवनीत
कौन से तीर्थंकर किस आसन से मोक्ष गए

वृषस्य वासुपूज्यस्य नेमेःपर्यङ्कबन्धतः।
कायोत्सर्गस्थितानां तु सिद्धि; शेषजिनेशिनाम्।।२८०।।

भगवान् वृषभनाथ,वासुपूज्य और नेमिनाथ पर्यंक आसन से तथा शेष तीर्थंकर कायोत्सर्ग आसन से स्थित हो मोक्ष गए हैं ।।२८०।।

(हरिवंशपुराण, सर्ग–६०, पृ. ७२६)

५५. जिनागम नवनीत
भीम महामुनि ने भाले के अग्रभाग से दिये जाने रूप वृत्तपरिसंख्यान नियम लिया था जो छह माह में पूर्ण हुआ था

इत्थं ते पाण्डवाः श्रुत्वा धर्मं पूर्वभवांस्तथा।
संवेगिनो जिनस्यान्ते संयमं प्रतिपेदिरे।।१४३।।

कुन्ती च द्रौपदी देवी सुभद्राद्याश्च योषितः।
राजीमत्याः समीपे ताः समस्तास्तपसि स्थिताः।।१४४।।

ज्ञानदर्शनचारित्रैर्व्रतैःसमितिगुप्तिभिः।
आत्मानं भावयन्तस्ते पाण्डवाद्यास्तपोऽचरन्।।१४५।।

शार्दूलविक्रीडितम्

कुन्ताग्रेण वितीर्णभैक्ष्यनियमः क्षुत्क्षामगात्रः क्षमः
षण्मासैरथ भीमसेनमुनिपो निष्ठाप्य स्वान्तक्लमम्।
षण्माद्यैरुपवासभेदविधिभिर्निष्ठाभिमुख्यैः स्थित-
र्ज्येष्ठाद्यैर्विजहार योगिभिरिलां जैनागमाम्भोधिभिः।।१४६।।

इस प्रकार वे पाण्डव धर्म तथा पूर्व भव श्रवण कर संसार से विरक्त हो श्री नेमिजिनेन्द्र के समीप संयम को प्राप्त हो गये ।।१४३।। कुन्ती, द्रौपदी तथा सुभद्रा आदि जो स्त्रियाँ थीं वे सब राजीमती आर्यिका के समीप तप में लीन हो गयीं ।।१४४।। सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान,सम्यक्चारित्र,महाव्रत, समिति तथा गुप्तियों से अपनी आत्मा के स्वरूप का चिन्तवन करते हुए वे पाण्डव आदि तप करने लगे ।।१४५।। उन सब मुनियों में भीमसेन मुनि बहुत ही शक्तिशाली मुनि थे। उन्होंने भाले के अग्रभाग से दिये हुए आहार को ग्रहण करने का नियम लिया था, क्षुधा से उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो

गया था और छह महीने में उन्होंने इस वृत्तपरिसंख्यान तप को पूरा कर हृदय का श्रम दूर किया था। युधिष्ठिर आदि मुनियों ने भी बड़ी श्रद्धा के साथ वेला, तेला आदि उपवास किये थे। इस प्रकार मुनिराज भीमसेन ने जैनागम के सागर युधिष्ठिर आदि मुनियों के साथ पृथिवी पर विहार किया ।।१४६।।

(हरिवंशपुराण पृ. ७९६, ७९७)

५६. जिनागम नवनीत
तीर्थंकरों के चैत्यवृक्ष की ऊँचाई का प्रमाण

चैत्यवृक्षस्तु वीरस्य द्वात्रिंशद्धनुरुच्छ्रितः।
देहोत्सेधाच्च शेषाणां स द्वादशगुणो मतः।।२०६।।

भगवान महावीर का चैत्यवृक्ष बत्तीस धनुष ऊँचा होगा और शेष तीर्थंकरों के चैत्यवृक्षों की ऊँचाई उनके शरीर की ऊँचाई से बारहगुनी मानी गई है ।।२०६।।

(हरिवंशपुराण पृ. ७२१)

५७. जिनागम नवनीत
संक्रांति में जैनेश्वरी दीक्षा का मुहूर्त नहीं है

गार्हस्थ्यमनुपाल्यैवं गृहवासाद् विरज्यतः।
यद्दीक्षाग्रहणं तद्धि पारिव्राज्यं प्रचक्ष्यते।।१५५।।
पारिव्राज्यं परिव्राजो भावो निर्वाणदीक्षणम्।
तत्र निर्ममता वृत्या जातरूपस्य धारणम्।।१५६।।
प्रशस्ततिथिनक्षत्रयोगलग्न ग्रहांशके।
निर्ग्रन्थाचार्यमाश्रित्य दीक्षा ग्राह्या मुमुक्षुणा।।१५७।।
विशुद्धकुलगोत्रस्य सद्वृत्तस्य वपुष्मतः।
दीक्षायोग्यत्वमाम्नातं सुमुखस्य सुमेधसः।।१५८
ग्रहोपरागग्रहणे परिवेषेन्द्रचापयोः।
वक्रग्रहोदये मेघपटलस्थगितेऽम्बरे।।१५९।।
नष्टाधिमासदिनयोः, संक्रान्तौ हानिमत्तिथौ।
दीक्षाविधिं मुमुक्षूणां नेच्छन्ति कृतबुद्धयः।।१६०।।
संप्रदायमनादृत्य यस्त्विमं दीक्षयेदधीः।
स साधुभिर्बहिः कार्यो वृद्धात्यासादनारतः।।१६१।।

इस प्रकार गृहस्थ धर्म का पालन कर घर के निवास से विरक्त होते हुए पुरुष का जो दीक्षा ग्रहण करना है उसे पारिव्रज्य कहते है ।।१५५।। परिव्राट् का जो निर्वाणदीक्षारूप भाव है उसे पारिव्रज्य कहते हैं, इस पारिव्रज्या क्रिया में ममत्व भाव छोड़कर दिगम्बररूप धारण करना पड़ता है।।१५६।। मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष को शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र, शुभ योग, शुभ लग्न और शुभ ग्रहों के अंश में निर्ग्रन्थ आचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए।।१५७।। जिसका कुल और गोत्र विशुद्ध है, चरित्र उत्तम है, मुख सुन्दर है और प्रतिभा अच्छी है ऐसा पुरुष ही दीक्षा ग्रहण करने के योग्य माना गया है ।।१५८।।

जिस दिन ग्रहों का उपराग हो, ग्रहण लगा हो, सूर्य-चन्द्रमा पर परिवेष (मण्डल) हो, इन्द्रधनुष उठा हो,दुष्ट ग्रहों का उदय हो, आकाश मेघपटल से ढका हो,नष्ट मास अथवा अधिक मास का दिन हो, **संक्रान्ति हो** अथवा क्षय तिथि का दिन हो उस दिन बुद्धिमान् आचार्य मोक्ष की इच्छा करने वाले भव्यों के लिए दीक्षा की विधि नहीं करना चाहते है अर्थात् उस दिन किसी शिष्य को नवीन दीक्षा नहीं देते हैं ।।१५९-१६०।।

जो मन्दबुद्धि आचार्य इस सम्प्रदाय का अनादर कर नवीन शिष्य को दीक्षा दे देता है वह वृद्ध पुरुषों के उल्लंघन करने में तत्पर होने से अन्य साधुओं के द्वारा बहिष्कार कर देने योग्य है।

भावार्थ—जो आचार्य असमय में ही शिष्यों को दीक्षा दे देते हैं, वह वृद्ध आचार्यों की मान्यता का उल्लंघन करते हैं, इसलिए साधुओं को चाहिए कि वे ऐसे आचार्य को अपने संघ से बाहर कर दें ।।१६१।।

(आदिपुराण भाग–२ पर्व ३९ वां, पृ. २८३, २८४)

५८. जिनागम नवनीत
पुण्य की महिमा का वर्णन

चक्रायुधोऽयमरिचक्रभयंकरश्रीराक्रम्य सिन्धुमतिभीषणनक्रचक्रम्।
चक्रे वशे सुरमवश्यमनन्यवश्यं पुण्यात् परं न हि वशीकरणं जगत्याम्।।२१६।।

शत्रुओं के समूह के लिए जिनकी सम्पत्ति बहुत ही भयंकर है ऐसे चक्रवर्ती भरत ने अत्यन्त भयंकर मगरमच्छों के समूह से भरे हुए समुद्र का उल्लंघन कर अन्य किसी के वश न होने योग्य मागध देव को निश्चितरूप से वश कर लिया,सो ठीक ही है क्योंकि लोक में पुण्य से बढ़कर और कोई वशीकरण (वश करने वाला)नहीं है।।२१६।।

पुण्यं जले स्थलमिवाभ्यवपद्यते नृन् पुण्यं स्थले जलमिवाशु नियन्ति तापम्।
पुण्यं जलस्थलभये शरण तृतीयं पुण्यं कुरुध्वमत एव जना जिनोक्तम्।।२१७।।

पुण्य ही मनुष्यों को जल में स्थल के समान हो जाता है, पुण्य ही स्थल में जल के समान होकर शीघ्र ही समस्त सन्ताप को नष्ट कर देता है और पुण्य ही जल तथा स्थल दोनों जगह के भय में एक तीसरा पदार्थ होकर शरण होता है, इसलिए हे भव्यजनों! तुम लोग जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे गये हुए पुण्यकर्म करो ।।२१७।।

पुण्यं परं शरणमापदि दुर्विलङ्घ्यं पुण्यं दरिद्रति जने धनदायि पुण्यम्।
पुण्यं सुखार्थिनि जने सुखदायि रत्नं पुण्यं जिनोदितमतः सुजनाश्चिनुध्वम्।।२१८।।

पुण्य ही आपत्ति के समय किसी के द्वारा उल्लंघन न करने के योग्य उत्कृष्ट शरण है, पुण्य ही दरिद्र मनुष्यों के लिए धन देने वाला है और पुण्य ही सुख की इच्छा करने वाले लोगों के लिए सुख देने वाला है इसलिए हे सज्जन पुरुषों ! तुम लोग जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुए इस पुण्यरूपी रत्न का संचय करो ।।२१८।।

(आदिपुराण भाग–२, पृ. ६०)

५९. जिनागम नवनीत
पुण्य के 4 भेद हैं

पुण्यं जिनेन्द्रपरिपूजनसाध्यमाद्यं पुण्यं सुपात्रगतदानसमुत्थमन्यत्।
पुण्यं व्रतानुचरणदुपवासयोगात् पुण्यार्थिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम्।।२१९।।

जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने से उत्पन्न होने वाला पहला पुण्य है, सुपात्र को दान देने से उत्पन्न हुआ दूसरा पुण्य है, व्रत पालन करने से उत्पन्न हुआ तीसरा पुण्य है और उपवास करने से उत्पन्न हुआ चौथा पुण्य है। इस प्रकार पुण्य की इच्छा करने वाले पुरुषों को ऊपर लिखे हुए चार प्रकार के पुण्यों का संचय करना चाहिए।।२१९।।

(आदिपुराण भाग–२ पृ. ६०)

६०. जिनागम नवनीत
पुण्य से चार प्रकार की लक्ष्मी मिलती है

पुण्याच्चक्रधरश्रियं विजयिनीमैन्द्रीं च दिव्यश्रियं।
पुण्यात्तीर्थकरश्रियं च परमां नैःश्रेयसीं चाश्नुते।
पुण्यादित्यसुभृच्छ्रियां चतसृणामाविर्भवेद् भाजनं।
तस्मात्पुण्यमुपार्जयन्तु सुधियः पुण्याज्जिनेन्द्रागमात्।।१२९।।

पुण्य से सबको विजय करने वाली चक्रवर्ती की लक्ष्मी मिलती है, इन्द्र की दिव्य लक्ष्मी भी पुण्य से मिलती है, पुण्य से तीर्थंकर की लक्ष्मी प्राप्त होती है और परम कल्याणरूप मोक्षलक्ष्मी भी पुण्य से ही मिलती है इस प्रकार यह जीव पुण्य से ही चारों प्रकार की लक्ष्मी का पात्र होता है, इसलिए हे सुधीजन! तुम लोग भी जिनेंन्द्र भगवान् के पवित्र आगम के अनुसार पुण्य का उपार्जन करो।।१२९।।

(आदिपुराण भाग–२ पृ. ९५)

६१. जिनागम नवनीत
पूजा के चार भेदों में मुनियों को दान देना भी शामिल है

प्रोक्ता पूजार्हतामिज्या सा चतुर्धा सदार्चनम्।
चतुर्मुखमहःकल्पद्रुमाश्चाष्टाह्निकोऽपि च।।२६।।

तत्र नित्यमहो नाम शश्वज्जिनगृहं प्रति।
स्वगृहान्नीयमानाऽर्चा गन्धपुष्पाक्षतादिका।।२७।।

चैत्यचैत्यालयादीना भक्त्या निर्मापणं च यत्।
शासनीकृत्य दानं च ग्रामादीनां सदार्चनम्।।२८।।

या च पूजा मुनीन्द्राणां नित्यादानानुषङ्गिणी।
स च नित्यमहो ज्ञेयो यथा शक्त्युपकल्पितः।।२९।।

महामुकुटबद्धैश्च क्रियमाणो महामहः।
चतुर्मुखः स विज्ञेयःसर्वतोभद्र इत्यपि।।३०।।

दत्वा किमिच्छकं दानं सम्राड्भिर्यः प्रवर्त्यते।
कल्पद्रुममहः सोऽयं जगदाशाप्रपूरणः।।३१।।

आष्टह्निको महः सार्वजनिको रूढ एव सः।
महानैन्द्रध्वजोऽन्यस्तु सुरगजैः कृतो महः।।३२।।

बलिस्नपनमित्यन्यस्त्रिसंन्ध्यासेवया समम्।
उक्तेष्वेव विकल्पेषु ज्ञेयमन्यच्च तादृशम्।।३३।।

एवं विधविधानेन या महेज्या जिनेशिनाम्।
विधिज्ञास्तामुशन्तीज्यां वृत्तिं प्राथमकल्पिकीम्।।३४।।

अर्हन्त भगवान् की पूजा नित्य करनी चाहिए, वह पूजा चार प्रकार की है– सदार्चन, चतुर्मुख, कल्पद्रुम और आष्टाह्निक।।२६।। इन चारों पूजाओं में से प्रतिदिन अपने घर से गन्ध,पुष्प,अक्षत इत्यादि ले जाकर जिनालय में श्रीजिनेन्द्रदेव की पूजा करना सदार्चन

अर्थात् नित्यमह कहलाता है।।२७।। अथवा भक्तिपूर्वक अर्हन्तदेव की प्रतिमा और मन्दिर का निर्माण कराना तथा दानपत्र लिखकर ग्राम, खेत आदि का दान देना भी सदार्चन (नित्यमह) कहलाता है ।।२८।। इसके सिवाय अपनी शक्ति के अनुसार नित्य दान देते हुए महामुनियों की जो पूजा की जाती है उसे भी नित्यमह समझना चाहिए।।२९।।

महामुकुटबद्ध राजाओं के द्वारा जो महायज्ञ किया जाता है उसे चतुर्मुख यज्ञ जानना चाहिए। इसका दूसरा नाम सर्वतोभद्र भी है ।।३०।। जो चक्रवर्तियों के द्वारा किमिच्छक (मुँहमाँगा) दान देकर किया जाता है और जिसमें जगत् के समस्त जीवों की आशाएँ पूर्ण की जाती हैं वह कल्पद्रुम नाम का यज्ञ कहलाता है।

भावार्थ—जिस यज्ञ में कल्पवृक्ष के समान सबकी इच्छाएँ पूर्ण की जावें उसे कल्पद्रुम यज्ञ कहते हैं, यह यज्ञ चक्रवर्ती ही कर सकते हैं।।३१।। चौथा आष्टान्हिक यज्ञ है, जिसे सब लोग करते हैं और जो जगत् में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके सिवाय एक ऐन्द्रध्वज महायज्ञ भी है, जिसे इन्द्र किया करता है।।३२।। बलि अर्थात् नैवेद्य चढ़ाना,अभिषेक करना, तीनों सन्ध्याओं में उपासना करना तथा इनके समान और भी जो पूजा के प्रकार हैं वे सब उन्हीं भेदों में अन्तर्भूत हैं ।।३३।। इस प्रकार की विधि से जो जिनेन्द्रदेव की महापूजा की जाती है उसे विधि के जानने वाले आचार्य इज्या नामकी प्रथम वृत्ति कहते हैं।।३४।।

(आदिपुराण भाग–२ पृ. २४२)

६२. जिनागम नवनीत

श्रावकों की इज्या आदि षट् क्रियायें हैं।

इज्यां वार्तां च दत्तिं च स्वाध्यायं संयमं तपः।
श्रुतोपासकसूत्रत्त्वात स तेभ्यः समुपादिशत्।।२४।।

भरत ने उन्हें उपासकाध्ययनांग से इज्या, वार्ता,दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप का उपदेश दिया।

(आदिपुराण भाग–२ पृ. २४१)

६३. जिनागम नवनीत

हरिवंश पुराण में पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों में ही सल्लेखना को कहा है

पञ्चधाणुव्रतं प्रोक्तं त्रिविधं च गुणव्रतम्।
शिक्षाव्रतं चतुर्भेदं धर्मोऽयं गृहिणां स्मृतः।।४५।।

हिंसादेर्देशतो मुक्तिरणुव्रतमुदीरितम्।
दिग्देशानर्थदण्डेभ्यो विरतिश्च गुणव्रतम्।।४६।।
सामायिकं त्रिसंध्यं तु प्रोषधातिथिपूजनम्।
आयुरन्ते च सल्लेखः शिक्षाव्रतमितीरितम्।।४७।।
मांसमद्यमधुद्यूतक्षीरिवृक्षफलोज्झनम्।
वेश्यावधूरतित्याग इत्यादिनियमो मतः।।४८।।
इदमेवेति तत्त्वार्थश्रद्धानं ज्ञानदर्शनम्।
शङ्काकाङ्क्षाजुगुप्सान्यमतशंसास्तवोज्झनम्।।४९।।
तथोपगूहनं मार्गभ्रंशिनां स्थितियोजनम्।
हेतवो दृष्टिसंशुद्धे वात्सल्यं च प्रभावना।।५०।।
साक्षादभ्युदयोपायःपरम्पर्येण मुक्तये।
गृहिधर्मोऽत्रमौनस्तु साक्षान्मोक्षाय कल्पते।।५१।।

गृहस्थों के लिए पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह बारह प्रकार का धर्म कहा है।।४५।। हिंसादि पापों का एक देश छोड़ना अणुव्रत कहा गया है, दिशा, देश और अनर्थ दण्डों से विरत होने को गुणव्रत कहते हैं और तीनों सन्ध्याओं में सामायिक करना, प्रोषधोपवास करना, अतिथि पूजन करना और आयु के अन्त में सल्लेखना धारण करना इसे शिक्षाव्रत कहते हैं।।४६-४७।। मद्य-त्याग, मांस त्याग, मधु-त्याग, द्यूत–त्याग, क्षीरिफल-त्याग ,वेश्या-त्याग तथा अन्यवधू-त्याग आदि नियम कहलाते हैं।।४८।। 'तत्त्व यही है' इस प्रकार ज्ञान और श्रद्धान होना सो सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। शंका,आकांक्षा,जगुप्सा तथा अन्य मत की प्रशंसा और स्तुति का छोड़ना, उपगूहन,मार्ग से भ्रष्ट होने वालों का स्थितिकरण करना,वात्सल्य और प्रभावना ये सब सम्यग्दर्शन को शुद्ध करने के हेतु हैं।।४९-५०।। गृहस्थ धर्म साक्षात् तो स्वर्गादिक अभ्युदय का कारण है और परम्परा से मोक्ष का कारण है, परन्तु मुनिधर्म मोक्ष का साक्षात् कारण है।।५१।।

(हरिवंशपुराण सर्ग–१८, पृ २६५)

६४. जिनागम नवनीत

द्वारावती में कुबेर ने सर्वप्रथम एक हजार शिखरों वाला जिनमंदिर बनाया था

इतो जलनिधेस्तीरे बले यादवभूभुजाम्।
निविष्टवति निर्मापयितुं स्थानीयमात्मनः।।१८।।

अष्टोपवासमादाय विधिमन्त्रपुरस्सरम्।
कंसारिःशुद्धभावेन दर्भशय्यातलं गतः।।१९।।
अश्वाकृतिधरं देवं मामारूह्य पयोनिधेः।
गच्छतस्ते भवेन्मध्ये पुरं द्वादशयोजनम्।।२०।।
इत्युक्तो नैगमाख्येन सुरेण मधुसूदनः।
चक्रे तथैव निश्चित्य सति पुण्ये न कः सखा।।२१।।
प्राप्तवेगोद्धतौ तस्मिन्नारूढे तुरगद्विषा।
हये धावति निर्द्वन्द्वं निश्चलत्कर्णचामरे।।२२।।
द्वेधाभेदभयाद्वार्धिर्भयादिव हरेरयात्।
भेद्यो धीशक्तियुक्तेन सङ्घातोऽपि जलात्मनाम्।।२३।।
शक्राज्ञया तदा तत्र निधीशो विधिवर्धितम्।
सहस्रकूटं व्याभासि भास्वद्रत्नमयं महत्।।२४।।
कृत्वा जिनगृहं पूर्वं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्।
वप्रप्राकारपरिखागोपुराट्टालकादिभिः ।।२५।।
राजमानां हरेः पुण्यात्तीर्थेशस्य च सम्भवात्।
निर्ममे नगरीं रम्यां सारपुण्यसमन्विताम्।।२६।।
सरित्पतिमहावीचीभुजालिङ्गितगोपुराम्।
दीप्त्या द्वारवतीसञ्ज्ञां हसन्तीं वामरीं पुरीम्।।२७।।
सपिता साग्रजो विष्णुस्तां प्रविश्य यथासुखम्।
लक्ष्मीकटाक्षसंवीक्ष्यस्तस्थिवान्यादवैः सह।।२८।।

इधर चलते-चलते यादवों की सेना अपना स्थान बनाने के लिए समुद्र के किनारे ठहर गई।।१८।। वहाँ कृष्ण ने शुद्ध भावों से दर्भ के आसन पर बैठकर विधिपूर्वक मन्त्र का जाप करते हुए अष्टोपवास का नियम लिया। उसी समय नैगम नामके देव ने कहा कि मैं घोड़ा का रूप रखकर आऊँगा सो मुझ पर सवार होकर तुम समुद्र के भीतर बारह योजन तक चले जाना। वहाँ तुम्हारे लिए नगर बन जायेगा। नैगम देव की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने निश्चयानुसार वैसा ही किया सो ठीक ही है, क्योंकि पुण्य के रहते हुए कौन मित्र नहीं हो जाता ?।।१९-२१।। जो प्राप्त हुए वेग से उद्धत है, जिस पर श्रीकृष्ण बैठे हुए हैं और जिसके कानों के चमर निश्चल है ऐसा घोड़ा जब दौड़ने लगा तब मानो श्रीकृष्ण के भय से ही समुद्र दो भेदों को प्राप्त हो गया सो ठीक ही है, क्योंकि बुद्धि और शक्ति से युक्त मनुष्यों के द्वारा जल का (पक्ष में मूर्ख लोगों का)समूह भेद को प्राप्त हो ही जाता है।।२२-२३।। उसी समय वहाँ श्रीकृष्ण तथा होनहार नेमिनाथ तीर्थंकर के

पुण्य से इन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेर ने एक सुन्दर नगरी की रचना की । जिसमें सबसे पहले उसने विधिपूर्वक मंगलों का मांगलिक स्थान और **एक हजार शिखरों से सुशोभित देदीप्यमान एक बड़ा जिनमंन्दिर बनाया,** फिर वप्र, कोट, परिखा, गोपुर तथा अट्टालिका आदि से सुशोभित,पुण्यात्मा जीवों से युक्त मनोहर नगरी बनाई । समुद्र अपनी बड़ी-बड़ी तरङ्गरूपी भुजाओं से उस नगरी के गोपुर का आलिङ्गन करता था, वह नगरी अपनी दीप्ति से देवपुरी की हँसी करती थी और द्वारावती उसका नाम था।।२४-२७।। जिन्हें लक्ष्मी कटाक्ष उठा कर देख रही है ऐसे श्रीकृष्ण ने पिता वसुदेव तथा बड़े भाई बलदेव के साथ उस नगरी में प्रवेश किया और यादवों के साथ सुख से रहने लगे।।२८।।

(उत्तरपुराण पर्व-७१, पृ. ३७६)

६५. जिनागम नवनीत

सबसे अधिक अकालमृत्यु पांडव-कौरव व जरासंध तथा श्रीकृष्ण के संग्राम में कुरुक्षेत्र में हुई है।

तत्र वाच्यो मनुष्याणां मृत्योरुत्कृष्टसञ्चयः।
कदलीघातजातस्येत्युक्तिमत्तद्रणाङ्गणम्।।१०९।।

एवं तुमुलयुद्धेन प्रवृत्ते सङ्गरे चिरम्।
सेनयोरन्तकस्यापि सन्तृप्तिःसमजायत।।११०।।
विलङ्घितं बलं विष्णोर्बलेन द्विषतां तथा।
यथा क्षुद्र सरिद्वारिमहासिन्धुप्लवाम्बुना।।१११।।

तदालोक्य हरिः क्रुद्धो हरिर्वा करिणां कुलम् ।
सामन्तबलसन्दोहसहितो हन्तुमुद्यतः।।११२।।
भास्करस्योदयाद्वान्धकारं शत्रुबलं तदा।
विलीनं तन्निरीक्ष्यैत्य जरासन्धोऽन्वितः क्रुधा।।११३।।

द्योतिताखिलदिक्चक्रं चक्रमादाय विक्रमात् ।
त्रिविक्रमं समुद्दिश्य न्यक्षिपद्रूक्षवीक्षणः।।११४।।

तत्तं प्रदक्षिणीकृत्य स्थितवद्दक्षिणे भुजे।
तदेवादाय कंसारिर्मगधेशोऽच्छिनच्छिरः।।११५।।

सद्यो जयानकानीकं नदति स्मागलन् दिवः।
सुरद्रुमप्रसूनानि सह गन्धाम्बुबिन्दुभिः।।११६।।

चक्री चक्रं पुरस्कृत्य विजिगीपुर्दिशो भृशम्।
प्रस्थानमकरोत्सार्धं बलेन स्वबलेन च।।११७।।
मागधदीन्सुरान् जित्वा विधेयीकृत्य विश्रुतान् ।
गृहीत्वा साररत्नानि तद्दत्तान्यूर्जितोदयः।।११८।।

आगम में जो मनुष्यों का कदलीघात नामका अकालमरण बतलाया गया है उसकी अधिक से अधिक संख्या यदि हुई थी तो उस युद्ध में ही हुई थी ऐसा उस युद्ध के मैदान के विषय में कहा जाता है ।।१०९।। इस प्रकार दोनों सेनाओं में चिरकाल तक तुमुल युद्ध होता रहा जिससे यमराज भी खूब सन्तुष्ट हो गया था।।११०।। तदनन्तर जिस प्रकार किसी छोटी नदी के जल को महानदी के प्रवाह का जल दबा देता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण की सेना को शत्रु की सेना ने दबा दिया।।१११।। यह देख,जिस प्रकार सिंह हाथियों के समूह पर टूट पड़ता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण क्रुद्ध होकर तथा सामन्त राजाओं की सेना के समूह साथ लेकर शत्रु को मारने के लिए उद्यत हो गये—शत्रु पर टूट पड़े ।।११२।। जिस प्रकार सूर्य का उदय होते ही अन्धकार विलीन हो जाता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण को देखते ही शत्रुओं की सेना विलीन हो गई—उसमें भगदड़ मच गई । यह देख क्रोध से भरा जरासन्ध आया और उसने रुक्ष दृष्टि से देखकर, अपने पराक्रम से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करने वाला चक्ररत्न ले श्रीकृष्ण की ओर चलाया।।११३-११४।। परन्तु वह चक्र प्रदक्षिणा देकर श्रीकृष्ण की दाहिनी भुजा पर ठहर गया। तदनन्तर वही चक्र लेकर श्रीकृष्ण ने मगधेश्वर–जरासन्ध का शिर काट डाला।।११५।। उसी समय श्रीकृष्ण की सेना में जीत के नगाड़े बजने लगे और आकाश से सुगन्धित जल की बूँदों के साथ साथ कल्पवृक्षों के फूल बरसने लगे।।११६।। चक्रवर्ती श्रीकृष्ण ने दिग्विजय की भारी इच्छा से चक्ररत्न आगे कर बड़े भाई बलदेव तथा अपनी सेना के साथ प्रस्थान किया।।११७।। जिनका उदय बलवान् है ऐसे श्रीकृष्ण ने मागध आदि प्रसिद्ध देवों को जीत कर अपना सेवक बनाया और उनके द्वारा दिये हुए श्रेष्ठ रत्न ग्रहण किये ।।११८।।

(उत्तरपुराण पृ. ३८२)

६६. जिनागम नवनीत
द्रौपदी का स्वयंवर हुआ है न कि भिक्षा में प्राप्त हुई

रूपलावण्यसौभाग्यकलालंकृतविग्रहा।
द्रौपदी तनया तस्य द्रुपदस्योपमोज्झिता।।१२२।।

तस्याःकृते कृताः सर्वे मनोजेन नृपात्मजाः।
सग्रहा इव याचन्ते नानोपायनपाणयः।।१२३।।
दाक्षिण्यभङ्गभीतेन द्रुपदेन ततो नृपाः।
विश्वे चन्द्रकवेधार्थमाहूताः कन्यकार्थिनः।।१२४।।
द्रौपदीग्रहवश्यानां काश्यप्यामिह भूभृताम्।
कर्णदुर्योधनादीनां माकन्द्यां निवहोऽभवत्।।१२५।।
सुरेन्द्रवर्धनः खेन्द्रः स्वसुतावरमार्गणैः।
धनुर्गाण्डीवमादेशाद्दिव्यं तत्र तदाऽकरोत्।।१२६।।
चण्डगाण्डीवकोदण्डमण्डलीकरणक्षमः।
राधावेधसमर्थो यो द्रौपद्याः भवेत्पतिः।।१२७।।
इतीमां घोषणां श्रुत्वा द्रोणकर्णादयो नृपाः।
समेत्य मण्डलीभूय कोदण्डमभितः स्थिताः।।१२८।।
देवताधिष्टितायास्तैश्चापयष्टेः प्रदर्शनम्।
आसीत्सत्या इवाशक्यं स्पर्शनाकर्षणे कुतः।।१२९।।
भाविना स्वामिना पश्चादर्जुनेन सदर्जुना।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तदाकृष्टा स सतीव वशं स्थिता।।१३०।।
आरोप्याकृष्य पार्थेन धनुर्ज्यास्फालिताक्षिभिः।
भ्रान्तं वधिरितं कर्णैः कर्णादीनां पटुध्वनौ।।१३१।।
वितर्कःकर्कशं दृष्ट्वा तं तेषामित्यभूदयम्।
सहजैः सहजैश्वर्यो मृत्वोत्पन्नः किमर्जुनः।।१३२।।
धन्विनः स्थानमन्यस्येदृशं सामान्यस्येदृशं कुतः।
अहो दृष्टिरहो मुष्टिरहो सौष्ठवमित्यपि।।१३३।।
भ्रमच्चक्रसमारूढो बाणं संधृत्य दक्षिणः।
लक्ष्यं चन्द्रकवेधाख्यं विव्याध नृपसंनिधौ।।१३४।।
द्रौपदी च द्रुतं मालां कन्धरेऽभ्येत्य बन्धुरे।
अकरोत्करपद्माभ्यामर्जुनस्य वरेच्छया।।१३५।।
विप्रकीर्णा तदा माला सहसा सहवर्तिनाम्।
पञ्चानाम गोत्रेषु चपलेन नभस्वता।।१३६।।
ततश्चपललोकस्य तत्त्वमूढस्य कस्यचित्।
वाचो विचेरुरित्युच्चैर्वताः पञ्चनयेत्यपि।।१३७।।

सद्गन्धस्य सुवृक्षस्य तुङ्गस्य फलितस्य सा।
पुष्पितेव लताभासीदर्जुनस्याङ्गमाश्रिता।।१३८।।
ततः कुन्त्याः समीपं सा धीरमञ्जीरबन्धना।
अग्रतःपश्यतां राज्ञां नीतानीतिविदां विदा।।१३९।।

राजा द्रुपद की एक द्रौपदी नामकी पुत्री भी थी जिसका शरीर रूप, लावण्य, सौभाग्य तथा अनेक कलाओं से अलंकृत था एवं जो अपने सौन्दर्य के विषय में उपमा नहीं रखती थी ।।१२२।। कामदेव ने सब राजपुत्रों को उसके लिए पागल-सा बना दिया था इसलिए वे नाना प्रकार के उपहार हाथ में ले उसकी याचना करते थे ।।१२३।। तदनन्तर 'किस-किससे बुराई की जाये' यह विचार दाक्षिण्य-भंग से भयभीत राजा द्रुपद ने कन्या की इच्छा रखने वाले सब राजकुमारों को चन्द्रक यन्त्र का वेध करने के लिए आमन्त्रित किया।।१२४। इस पृथ्वी पर द्रौपदीरूप ग्रह के वशीभूत हुए कर्ण, दुर्योधन आदि जितने राजा थे उन सबका झुण्ड माकन्दी नगरी में इकट्ठा हो गया।।१२५।। उसी समय सुरेन्द्रवर्धन नामका एक विद्याधर राजा अपनी पुत्री के योग्य वर खोजने के लिए वहाँ आया और उसने राजा द्रुपद की आज्ञा से गाण्डीव नामक धनुष को वर की परीक्षा का साधन निश्चित किया।।१२६।। उस समय यह घोषणा की गयी कि 'जो अत्यन्त भयंकर गाण्डीव धनुष को गोल करने एवं राधावेध (चन्द्रकवेध) में समर्थ होगा वही द्रौपदी का पति होगा' ।।१२७।। इस घोषणा को सुनकर वहाँ जो द्रोण तथा कर्ण आदि राजा आये थे वे सब गोलाकार हो धनुष के चारों ओर खड़े हो गये ।।१२८।। परन्तु सती स्त्री के समान देवों से अधिष्ठित उस धनुष-यष्टि का देखना भी उनके लिए अशक्य था फिर छूना और खींचना तो दूर रहा।।१२९।। तदनंतर जब सब परास्त हो गये तब द्रौपदी के होनहार पति एवं सदा सरल प्रकृति को धारण करने वाले अर्जुन ने उस धनुष-यष्टि को देखकर तथा छूकर ऐसा खींचा कि वह सती स्त्री के समान इनके वशीभूत हो गयी।।१३०।। जब अर्जुन ने खींचकर उस पर डोरी चढ़ायी और उसका आस्फालन किया तो उसके प्रचण्ड शब्द में कर्ण आदि राजाओं के नेत्र फिर गये तथा कान बहरे हो गये।।१३१।। तीक्ष्ण आकृति के धारक पार्थको देखकर कर्ण आदि के मन में यह तर्क उत्पन्न हुआ कि क्या स्वाभाविक ऐश्वर्य को धारण करने वाला अर्जुन अपने भाईयों के साथ मरकर यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ है ?।।१३२।। अर्जुन के सिवाय अन्य सामान्य धनुर्धारी का ऐसा खड़ा होना कहाँ सम्भव है ? अहा! इसकी दृष्टि, इसकी मुट्ठी और इसकी चतुराई—सभी आश्चर्यकारी हैं।।१३३।। उधर राजा लोग ऐसा विचार कर रहे थे इधर अत्यन्त चतुर अर्जुन डोरी पर बाण रख झट से चलते हुए चक्र पर चढ़ गया

और राजाओं के देखते-देखते उसने शीघ्र ही चन्द्रकवेध नामका लक्ष्य वेध दिया।।१३४।। उसी समय द्रौपदी ने शीघ्र ही आकर वर की इच्छा से अर्जुन की झुकी हुई सुन्दर ग्रीवा में अपने दोनों कर-कमलों से माला डाल दी।।१३५।। उस समय जोरदार वायु चल रही थी इसलिए वह माला टूट कर साथ खड़े हुए पाँचों पाण्डवों के शरीर पर जा पड़ी।।१३६।। इसलिए विवेकहीन किसी चपल मनुष्य ने जोर-जोर से यह वचन कहना शुरू कर दिया कि इसने पाँच कुमारों को वरा है।।१३७।। जिस प्रकार किसी सुगन्धित,ऊँचे एवं फलों से युक्त वृक्ष पर लिपटी फूली लता सुशोभित होती है उसी प्रकार अर्जुन के समीप खड़ी द्रौपदी सुशोभित हो रही थी ।।१३८।। तदनन्तर कुशल अर्जुन नुपूरों के निश्चल बन्धन से युक्त उस खड़ी द्रौपदी को अनीतिज्ञ राजाओं के आगे से उनके देखते-देखते माता कुन्ती के पास ले चला ।।१३९।।

(हरिवंशपुराण सर्ग-४५, पृ. ५४७)

६७. जिनागम नवनीत

द्रौपदी को पंचभर्तारी मानने वालों के प्रति आचार्यदेव के वचन

स्नुषाबुद्धिरभूत्तस्यां ज्येष्ठयोरर्जुनस्त्रियाम्।
द्रौपद्यां यमलस्यापि मातरीवानुवर्तनम्।।१५०।।
तस्याः श्वसुरबुद्धिस्तु पाण्डाविव तयोरभूत।
अर्जुनप्रेमसंरुद्धमौचित्यं देवरद्वये।।१५१।।
अत्यन्तशुद्धवृत्तेषु येऽभ्याख्यानपरायणाः।
तेषां तत्प्रभवं पापं को निवारयितुं क्षमः।।१५२।।
सद्भूतस्यापि दोषस्य परकीयस्य भाषणम्।
पापहेतुरमोघः स्यादसद्भूतस्य किं पुनः।।१५३।।
प्राकृतानामपि प्रीत्या समानधनता धने।
न स्त्रीषु त्रिषु लोकेषु प्रसिद्धनां किमुच्यते ।।१५४।।
महापुरुषकोटीस्थकूटदोषविभाषिणाम्।
असतां कथमायाति न जिह्वा शतखण्डताम।।१५५।।
वक्ता श्रोता च पापस्य यन्नात्र फलमश्नुते।
तदमोघममुत्रास्य वृद्ध्यर्थमिति बुद्ध्यताम्।।१५६।।
वक्तः श्रोतुश्च सद्बुद्ध्य यथा पुण्यमयी श्रुतिः।
श्रेयसे विपरीताय तथ पापमयी श्रुतिः।।१५७।।

द्रौपदी की भी पाण्डु के समान युधिष्ठिर और भीम में श्वसुर बुद्धि थी और सहदेव तथा नकुल इन दोनों देवरों में अर्जुन के प्रेम के अनुरूप उचित बुद्धि थी।।१५१।। गौतमस्वामी कहते हैं कि जो अत्यन्त शुद्ध आचार के धारक मनुष्यों की निन्दा करने में तत्पर रहते हैं उनके उस निन्दा से उत्पन्न हुए पाप का निवारण करने के लिए कौन समर्थ है ?।।१५२।। दूसरे के विद्यमान दोष का कथन करना भी पाप का कारण है। फिर अविद्यमान दोष के कथन करने की तो बात ही क्या है ? वह तो ऐसे पाप का कारण होता है जिसका फल कभी व्यर्थ नहीं जाता—अवश्य ही भोगना पड़ता है।।१५३।। साधारण से साधारण मनुष्यों में प्रीति के कारण यदि समानधनता होती है तो धन के विषय में ही होती है स्त्रियों में नहीं होती। फिर जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं उनकी तो बात ही क्या है ?।।१५४।। महापुरुषों की कोटि में स्थित पाण्डवों के मिथ्या दोष कथन करने वाले दुष्टों की जिह्वा के सौ खण्ड क्यों नहीं हो जाते ?।।१५५।। पाप का फल वक्ता औ श्रोता जो इस लोक में उसका फल नहीं प्राप्त कर पाता है वह मानो परलोक में वृद्धि के लिए ही सुरक्षित रहता है एसा समझना चाहिए।

भावार्थ—जिस पाप का फल वक्ता और श्रोता को इस जन्म में नहीं मिल पाता है उसका फल परभव में अवश्य मिलता हे और ब्याज के साथ मिलता है।।१५६।। सद्बुद्धि से पुण्यरूप कथाओं का सुनना वक्ता और श्रोता के लिए जिस प्रकार कल्याण का कारण माना गया है उसी प्रकार पापरूप कथाओं का सुनना उनके लिए अकल्याण का कारण माना गया है।।१५७।। (हरिवंशपुराण, सर्ग–४५ पृ. ५४९)

६८. जिनागम नवनीत

उमास्वामी श्रावकाचार तत्त्वार्थसूत्र के कर्ता के द्वारा ही रचित है।

एवं व्रतं मया प्रोक्तं त्रयोदशधैर्युतम्।
निरतिचारकं पाल्यं तेऽतीचारास्तु सप्ततिः।।४६३।।

अर्थ—इस प्रकार मैंने श्रावकों के तेरह प्रकार के चारित्र का निरूपण किया है। ये तेरहों प्रकार के व्रत अतिचार रहित पालन करने चाहिये। इन सब व्रतों के अतिचारों की संख्या सत्तर है। प्रत्येक व्रत के पाँच-पांच अतिचार हैं इस प्रकार बारह व्रतों के साठ अतिचार हैं तथा पाँच सम्यग्दर्शन के और पांच सल्लेखना के इस प्रकार सत्तर अतिचार होते हैं।

सूत्रे तु सप्तमेऽप्युक्ताः प्रथग्नोक्तास्तदर्थतः।
अवशिष्टः समाचारः सोत्रैव कथितो ध्रुवम्।।४६४।।

अर्थ—तत्त्वार्थसूत्र के सातवें अध्याय में इन समस्त अतिचारों का निरूपण किया है। इसलिए यहाँ पर उनका वर्णन नहीं किया। सातवें अध्याय के कथन से जो बचे हुए समाचार हैं वे ही यहां इस ग्रन्थ में निरूपण किये हैं।*

*यह ग्रन्थ भगवान् उमास्वामी का बनाया हुआ है तथा मोक्षशास्त्र या तत्त्वार्थसूत्र भी भगवान् उमास्वामी का बनाया हुआ है । भगवान् उमास्वामी ने अपने तत्त्वार्थसूत्र में इन सत्तर अतिचारों का निरूपण बहुत अच्छी तरह किया है। इसीलिये आचार्य ने इस श्लोक में अतिचारों का हवाला दे दिया है। जो विषय अपने ही किसी ग्रन्थ में कहा जा चुका है, उसी विषय को दूसरे ग्रन्थ में लिखना शोभा नहीं देता। इसीलिए आचार्य महाराज ने अतिचार नहीं कहे हैं। तत्त्वार्थसूत्र में पूजा प्रकरण या श्रावकों के षट्कर्मों का वर्णन नहीं है। इन षट्कर्मों को ही समाचार कहते हैं। व्रतों का वर्णन भी अत्यन्त संक्षिप्त है। विधि विधान किसी का नहीं है। इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्र में श्रावकाचार सम्बन्धी जो कमी थी वह इस ग्रंथ में पूरी की है। यह बात इस श्लोक से स्पष्ट जान पड़ती है।

(उमास्वामी श्रावकाचार पृ. १५१)

६९. जिनागम नवनीत

अग्नि में हवन के प्रमाण एवं सप्तमप्रतिमाधारी ब्रह्मचारी भी हवन करें

तदाकर्णेनमात्रेण सत्वरः सर्वसंगतः।
चक्रवर्ती तमभ्येत्य त्रिःपरीत्य कृतस्तुतिः।।३३६।।

महामहमहापूजां भक्त्या निवर्तयन्स्वयम्।
चतुर्दश दिनान्येवं भगवन्तमसेवत।।३३७।।

माघकृष्णचतुर्दश्यां भगवान् भास्करोदये।
मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्तपल्यङ्को मुनिभिः समम्।।३३८।।

प्राग्दिङ्मुखस्तृतीयेन शुक्लध्यानेन रूढ्वान्।
योगत्रितयमन्येन ध्यानेनघातिकर्मणाम्।।३३९।।

पञ्चह्रस्वरोच्चारणप्रमाणेन संक्षयम्।
कालेन विदधत्प्रान्तगुणस्थानमष्टितिः।।३४०।।

शरीरत्रितयापाये प्राप्य सिद्धवपर्ययम्।
निजाष्टागुणसंपूर्णः क्षणाप्तनुवातकः।।३४१।।

नित्यो निरञ्जनःकिंचिदूनो देहादमूर्तिभाक्।
स्थितःस्वसुखसाद्भूतःपश्यन्विश्वमनारतम्।।३४२।।

तदागत्य सुराः सर्वे प्रान्तपूजाचिकीर्षया।
पवित्रं परमं मोक्षसाधनं शुचिनिर्मलम्।।३४३।।
शरीरं भर्तुरस्येति पराद्र्ध्यशिबिकार्पितम्।
अग्रीन्द्ररत्नभाभासिप्रोत्तुङ्गमुकुटोद्भुवा।।३४४।।
चन्दनागुरुकर्पूरपारी काश्मीरजादिभिः।
घृतक्षीरादिभिश्चाप्तवृद्धिना हुतभोजिना।।३४५।।
जगद्गृहस्य सौगन्ध्यं संपाद्याभूतपूर्वकम्।
तदाकारोपमर्देन पर्यायान्तरमानयन्।।३४६।।
अभ्यर्चिताग्निकुण्डस्य गन्धपुष्पादिभिस्तथा।
तस्य दक्षिणभागेऽभूद् गणभृत्यंस्क्रियानलः।।३४७।।
तस्यापरिस्मिन् दिग्भागे शेषकेवलिकायगः।
एवं वह्नित्रयं भूमा अवस्थाप्यामरेश्वराः।।३४८।।
ततो भस्म समादाय पञ्चकल्याणभागिनः।
वयं चैवं भवामेति स्वललाटे भुजद्वये।।३४९।।
कण्ठे हृदयदेशे च तेन संस्पृश्य भक्तितः।
तत्पवित्रतमं मत्वा धर्मरागरसाहिसता।।३५०।।

यह सुनते ही भरत चक्रवती बहुत ही शीघ्र सब लोगों के साथ-साथ कैलाश पर्वत पर गया, वहाँ जाकर उसने भगवान् वृषभदेव की तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, स्तुति की और भक्तिपूर्वक अपने हाथ से महामह नामकी पूजा करता हुआ वह चौदह दिन तक इसी प्रकार भगवान् की सेवा करता रहा ।।३३६-३३७।। माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के शुभ मुहूर्त और अभिजित् नक्षत्र में भगवान् वृषभदेव पूर्व दिशा की ओर मुँहकर अनेक मुनियों के साथ-साथ पर्यंकासन से विराजमान हुए, उन्होंने तीसरे-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम के शुक्लध्यान से तीनों योगों का निरोध किया और फिर अन्तिम गुणस्थान में ठहरकर पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण प्रमाण काल में चौथे व्युपरत- क्रियानिवृत्ति नाम के शुक्लध्यान से अघातिया कर्मों का नाश किया। फिर औदारिक, तैजस और कार्मण इन तीनों शरीरों के नाश होने से सिद्धत्वपर्याय प्राप्त कर वे सम्यक्त्व आदि निज के आठ गुणों से युक्त हो क्षण भर में ही तनुवातवलय में जा पहुँचे तथा वहाँ पर नित्य, निरंजन, अपने शरीर से कुछ कम, अमूर्त, आत्मसुख तल्लीन में और निरन्तर संसार को देखते हुए विराजमान हुए ।।३३८-३४२।। उसी समय मोक्ष-कल्याणक की पूजा करने की इच्छा से सब देव लोग आये उन्होंने "यह भगवान् का शरीर पवित्र, उत्कृष्ट,मोक्ष

का साधन,स्वच्छ और निर्मल है" यह विचारकर उसे बहुमूल्य पालकी में विराजमान किया। तदनन्तर जो अग्निकुमार देवों के इन्द्र के रत्नों की कान्ति से देदीप्यमान उन्नत मुकुट से उत्पन्न हुई है तथा चन्दन, अगुरु, कपूर, केशर आदि सुगन्धि पदार्थों और घी, दूध आदि से बढ़ायी गयी है ऐसी अग्नि से जगत की अभूतपूर्व सुगन्धि प्रकट कर उसका वर्तमान आकार नष्ट कर दिया और इस प्रकार उसे दूसरी पर्याय प्राप्त करा दी ।।३४३-३४६।। गन्ध,पुष्प आदि से जिसकी पूजा कही गयी है ऐसे उस अग्निकुण्ड के दाहिनी ओर गणधरों के शरीर का संस्कार करने वाली अग्नि स्थापित की और बाँयी ओर तीर्थंकर तथा गणधरों से अतिरिक्त अन्य सामान्य केवलियों के शरीर का संस्कार करने वाली अग्नि स्थापित की, इस प्रकार इन्द्रों ने पृथिवी पर तीन प्रकार की अग्नि स्थापित की। तदनन्तर उन्हीं इन्द्रों ने पंचकल्याणक को प्राप्त होने वाले श्री वृषभदेव के शरीर की भस्म उठायी और 'हमलोग भी ऐसे ही हों'यही सोचकर बड़ी भक्ति से अपने ललाट पर दोनों भुजाओं में, गले में और वक्षःस्थल में लगायी। वे सब उस भस्म को अत्यन्त पवित्र मानकर धर्मानुराग के रस से तन्मय हो रहे थे।।३४७-३५०।। सबने मिलकर बड़े सन्तोष से आनन्द नामका नाटक किया और फिर श्रावकों को उपदेश दिया कि **'हे सप्तमादि प्रतिमाओं को धारण करने वाले सभी ब्रह्मचारियों,तुम लोग तीनों सन्ध्याओं में स्वयं गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि इन तीन अग्नियों की स्थापना करो और उनके समीप ही धर्मचक्र, छत्र तथा जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओं की स्थापना कर तीनों काल मन्त्रपूर्वक उनकी पूजा करो।** इस प्रकार गृहस्थों के द्वारा आदर-सत्कार पाते हुए अतिथि बनो'।।३५१-३५४।।

(आदिपुराण भाग-२ पर्व-४७, पृ. ५०७-५०८)

७०. जिनागम नवनीत
सचित्त को अचित्त करने की विधि

सच्चित्तं पत्तं फलं छल्ली मूलं च किसलयं बीयं।
जो ण य भक्खदि णाणी सचित्त-विरदो हवे सो दु।।३७९।।

(छाया-सचित्तं पत्रफलं त्वक् मूलं च किसलयं बीजम् । यः न च भक्षयति ज्ञानी सचित्तविरतः भवेत् स तु ।।)सोऽपि प्रसिद्धः,अपि शब्दात् न केवलमग्रेसरः, श्रावकः सचित्तविरतः सचित्तेभ्यः जलफलादिभ्यो विरतः विगतरागः निवृत्तःभवेत् यः ज्ञानी भेदविज्ञान-विवेकगुणसंपन्नः श्रावकः न भक्षते न अश्नाति। किं तत् । सचित्तं चित्तेन चैतन्येन आत्मना जीवेन सह वर्तमानं सचित्तम् । किं तत् । पत्रफलं सचित्तनागवल्लीदललिम्ब-

पत्रसर्षपचणकादिपत्रधत्तूरादिदलपत्रशाकादिकं नाश्राति, फलं सचित्तचिर्भटकर्कटिका–दिकूष्माण्डनीबूफलदाडिम–बीजपूरापक्वाम्रकदलीफलादिकम् , छल्ली वृक्षवल्लयादि–सचित्तत्वक्नात्ति, मूलम् आर्द्रकादिलिम्बादिवृक्षवल्लीवनस्पतीनां मूलं न खादति, किसलयं पल्लवं लघुपल्लवकुड्मलं नात्ति, बीजं सचित्तचणकमुद्गतिलवर्जरिकामाषाढकीजीरककुवेर–राजीगोधूमव्रीह्यादिकं न भक्षते। उक्तं च। 'मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि। नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः।।' प्रासुकं कतिधेत्युच्यते। 'तत्तं पक्कं सुक्कं अंबिललवणेहिं मीसियं दव्वं। जं तंतेण य छिण्णं तं सव्वं पासुयं भणियं।।'इति।।३७९।।

अर्थ—जो ज्ञानी श्रावक सचित्त पत्र, सचित्त फल, सचित्त छाल, सचित्त मूल, सचित्त कोंपल और सचित्त बीज को नहीं खाता वह सचित्तविरत है ।।

भावार्थ—जो ज्ञानी श्रावक सचित्त अर्थात् जिसमें जीव मौजूद हैं ऐसे नागवल्ली के पत्तों को, नींबू के पत्तों को, सरसों और चने के पत्तों को, धतूरे के पत्तों को और पत्तों की शाक वगैरह को नहीं खाता, सचित्त खरबूजे, ककड़ी, पेठा, नींबू, अनार, बिजौरा, आम, केला आदि फलों को नहीं खाता, वृक्ष की सचित्त छाल को नहीं खाता, सचित्त अदरक वगैरह मूलों को नहीं खाता, वनस्पतियों का मूल यदि सचित्त हो तो नहीं खाता, छोटी–छोटी ताजी नई कोंपलो को नहीं खाता तथा सचित्त चने, मूंग, तिल, उड़द, अरहर, जीरा, गेहूँ ,जौ वगैरह बीजों को नहीं खाता वह सचित्त त्यागी कहा जाता है। कहा भी है–" जो दयालु श्रावक मूल, फल, शाक, शाखा, कोंपल, वनस्पति का मूल, फूल और बीजों को अपक्व दशा में नहीं खाता वह सचित्तविरत है।"

सुक्कं पक्कं तत्तं अंविललवणेण मिस्सियं दव्वं।
जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं।।

अर्थ—जो द्रव्य सूखा हो,पका हो, तप्त हो, आम्ल रस तथा लवण मिश्रित हो, कोल्हू, चरखी, चक्की, छुरी आदिक यंत्रों से छिन्न–भिन्न किया हुआ तथा संशोधित हो, सो सब प्रासुक हैं। यह गाथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा की संस्कृत टीका में तथा केशववर्णीकृत गोम्मटसार की संस्कृतटीका में भी सत्य वचन के भेदों में कही गई है।

(पुरुषार्थसिद्ध्युपाय पृ. ५५)

७१. जिनागम नवनीत

भगवान को चढ़ाने के लिये पुष्प कैसे हों ?

हस्तात्प्रस्खलितं क्षितौ निपतितं लग्नं क्वचित्पादयो।
यन्मूर्द्धोर्ध्वगतं धृतं कुवसने नाभेरधो यद्धृतम्।।

स्पृष्टं दुष्टजनैर्घनैरभिहतं यद्दूषितं कंटकैः।
त्याज्यं तत्कुसुमं वदंति विबुधाः भक्त्या जिनप्रीतये।।१३१।।

अर्थ—जो पुष्प हाथ से गिर गया हो, पृथ्वी पर गिर पड़ा हो, पैर से छू गया हो, मस्तक पर धारण कर लिया गया हो, अपवित्र वस्त्र में रक्खा गया हो, दुष्ट मनुष्यों के द्वारा स्पर्श किया गया हो, घन से छिन्न–भिन्न किया गया हो और कांटों से दूषित हो ऐसे पुष्पों का त्याग कर देना चाहिये अर्थात् भगवान् की पूजा करने में ऐसे पुष्प नहीं चढ़ाना चाहिये ऐसा गणधरादि विद्वान् पुरुषों ने कहा है।

स्पृश्य शूद्रादिजं स्पृश्यमस्पृश्यादपसारितम्।
पुष्पं देयं महाभक्त्या न तु दुष्टजनैर्धृतम्।।१३२।।

अर्थ—स्पृश्य शूद्र के हाथ से लाये हुए पुष्प ग्राह्य हैं तथा अस्पृश्य शूद्र के हाथ से लाये हुए पुष्प त्याज्य हैं। पुष्प भगवान् के चरणों पर बड़ी भक्ति से चढ़ाना चाहिये परन्तु दुष्टजनों के हाथ से लाये हुए पुष्प कभी नहीं चढ़ाने चाहिये।

(उमास्वामी श्रावकाचार पृ. ५१–५२)

७२. जिनागम नवनीत

दूध से अभिषेक हेतु गाय, पुष्प चढ़ाने हेतु वाटिका एवं अभिषेक, पूजा के लिए जल हेतु कुंआ खुदवाने में दोष नहीं है।

पयोर्थं गां जलार्थं च कूपं पुष्पसुहेतवे।
वाटिका संप्रकुर्वन्ना नाति दोषधरो भवेत्।।१३३।।

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेव का अभिषेक करने के लिये सुगमता से दूध की प्राप्ति हो जाय इसके लिये गाय का रखना या जिनालय में गाय को दान देना दोषाधायक नहीं है। इसी प्रकार पूजा में सुगमता से पुष्पों की प्राप्ति के लिये बाग–बगीचा बनवाने में भी दोष नहीं है। पूजा के लिये सुगमता से जल मिलता रहे इसके लिये कुआँ बनवाने में भी अत्यन्त दोष नहीं होता है।

भावार्थ—यद्यपि जैन शास्त्रों में कुआँ खुदवाने का तथा बगीचा लगवाने का निषेध है, इसी प्रकार गाय का दान देने का भी निषेध है, क्योंकि इन सब कामों में हिंसा अवश्य और अधिकता के साथ होती है। परन्तु यहाँ पर जो इसका विधान लिखा है वह केवल सुगमता के साथ भगवान की पूजा सदा होती रहने के लिए लिखा है। उद्देश्य भिन्न–भिन्न होने से एक ही क्रिया से पुण्य पाप दोनों हो सकते हैं। केवल खा–पीकर मस्त होने के लिए भोजन बनाना पाप है। परन्तु मुनियों को दान देने के लिये भोजन बनाना

पुण्य का कारण है। इसी प्रकार मृतक को वैतरणी नदी से पार कर देने के लिये गाय का दान मिथ्यात्व वा पाप है, परन्तु भगवान् का अभिषेक सुगमता के साथ सदा होते रहने के लिये गाय का दान देना पुण्य का कारण है। इसी प्रकार कुआँ खुदवाने और बगीचा लगाने में अधिक हिंसा होती है, परन्तु भगवान् की पूजा करने के लिये कुआँ, बगीची बनवाना पुण्य का ही कारण माना जाता है। जिस प्रकार पूजा करने में भी हिंसा होती है, परन्तु इन कामों के करने में अनेक जीवों को महापुण्य का बंध होता है और इसीलिये भव्य जीव बड़ी भक्ति से इन कामों को करते हैं। इसी प्रकार जिनालय में गाय का दान देना वा जिनालय के लिये कुआं, बगीची बनवाना पुण्य का ही कारण है। पुण्य–पाप भावों से होता है तथा मिथ्यात्व और सम्यक्त्व भी भावों से ही होता है। इन सब बातों को समझकर मोक्ष के कारणभूत पुण्य कार्य सदा करते रहना चाहिये।

(उमास्वामी श्रावकाचार पृ. ५२, ५३)

७३. जिनागम नवनीत

द्विदल कच्चे दूध और कच्चे दूध के जमाये दही में दो दाल वाले धान्य के मिलाने से बनता है।

आमगोरससंपृक्तं द्विदलं द्रोणपुष्पिका।
संधानकं कलिंगं च नाद्यते शुद्धदृष्टिभिः।।३११।।

अर्थ—कच्चा दूध, कच्चा दही और कच्चे दूध के जमाये दही की छाछ में यदि उड़द,मूंग,चना आदि (जिनकी दो दालें हो सकती हैं) द्विदल को खाने से लार के संयोग से उसमें त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये शुद्ध सम्यग्दृष्टियों को ऐसा दही आदि का मिला हुआ द्विदल कभी नहीं खाना चाहिए। इसी प्रकार मर्यादा के बाहर का दूध, दही भी नहीं खाना चाहिये। द्रोणपुष्प अचार, कलिंग आदि पदार्थ भी उनको कभी नहीं खाने चाहिये।

(उमास्वामी श्रावकाचार पृ. १०५)

७४. जिनागम नवनीत

पांच स्थावर के चार-चार भेदों में दो-दो निर्जीव हैं।

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः।।१३।।

पृथिवी च आपश्च तेजश्च वायुश्च वनस्पतिश्च पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः। तिष्ठन्ति इत्येवंशीलाः स्थावराः। एते पृथिव्यादय एकेन्द्रियजीवविशेषाःस्थावरनामकर्मोदयात् स्थावराःकथ्यन्ते। ते तु प्रत्येकं चतुर्विधाः–पृथिवी,पृथिवीकायः, पृथिवीकायिकः

पृथिवीजीवः।आपः,अप्कायः,अप्कायिकः, अप्जीवः। तेजः, तेजःकायः, तेजकायिकाः तेजोजीवः। वायुः, वायुकायः, वायुकायिकाः, वायुजीवः। वनस्पतिः, वनस्पतिकायः, वनस्पतिकायिकः,वनस्पतिजीव इति।

तत्र अध्वादिस्थिता धूलिः पृथिवी। इष्टकादिः पृथ्विीकायः। पृथ्वीकायिक–जीवपरिहृतत्वात् इष्टकादिः पृथ्वीकायःकथ्यते मृतमनुष्यादिकायवत् । तत्र स्थावर–कायनामकर्मोदयो नास्ति,तेन तद्विराधनायामपि दोषो न भवति। पृथिवीकायो विद्यते यस्य स पृथ्वीकायिकः। इन् विषये इको वाच्यः। तद्विराधनायां दोष उत्पद्यते। विग्रहगतौ प्रवृत्तो यो जीवोऽद्यापि पृथिवीमध्ये नोत्पन्नः समयेन समयद्वयेन समयत्रयेण वा यावदनाहारकः पृथिवीं कायत्वेन यो गृहीष्यति प्राप्तपृथ्वीनामकर्मोदयः कार्मण–काययोगस्थः स पृथिवीजीवः कथ्यते।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावरकाय हैं।।१३।।

सूत्र में पृथिवीकाय आदि के साथ द्वन्द्व समास है। शब्दार्थ की अपेक्षा स्थानशील को स्थावर कहते हैं। परन्तु आगमानुसार स्थावर नाम कर्म का उदय होने से ये पृथ्वीकाय आदि पाँचों एकेन्द्रिय जीव विशेष स्थावर नाम कर्म का उदय होने से ये पृथ्वीकाय आदि पाँचों एकेन्द्रिय जीव विशेष स्थावर कहलाते हैं। इनमें प्रत्येक के चार–चार भेद हैं। पृथिवी, पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक और पृथ्वीजीव। जल, जलकाय, जलकायिक और जलजीव। अग्नि, अग्निकाय, अग्निकायिक और अग्निजीव। वायु, वायुकाय, वायुकायिक और वायुजीव। वनस्पति, वनस्पतिकाय, वनस्पतिकायिक और वनस्पतिजीव।

मार्ग में पड़ी हुई धूलि आदि **पृथ्वी** है। पृथ्वीकायिक जीव के द्वारा परित्यक्त ईंट आदि **पृथ्वीकाय** है। जैसे मृतक मनुष्य आदि का शरीर। पृथिवी और पृथिवीकाय के स्थावर नामकर्म का उदय न होने से वे निर्जीव हैं अतः इनकी विराधना में दोष (हिंसा) नहीं है। जिस जीव के पृथ्वीरूपकाय विद्यमान है, उसे **पृथिवीकायिक** कहते हैं। अर्थात् यह जीव पृथिवीरूप शरीर के सम्बन्ध से युक्त है। इन विषय में 'इक्' प्रत्यय वाच्य है अतः जीव सहित होने से इनकी विराधना में दोष (हिंसा) उत्पन्न होते हैं। विग्रहगति में स्थित जीव जब तक पृथिवी के मध्य में उत्पन्न नहीं हुआ है (अर्थात् जब तक इस जीव ने पृथ्वी को कायरूप से ग्रहण नहीं किया है) तब तक एक, दो, तीन समय तक अनाहारक है, दो, तीन समय के बाद जो पृथिवी को कायरूप से ग्रहण करेगा जिसके पृथिवी नामकर्म का उदय है और जो कार्मण काययोग में स्थित है–वह जीव **पृथ्वीजीव** कहलाता है।

(तत्त्वार्थवृत्ति, अध्याय–२ सूत्र १३ पृ. १९७–१९८)

७५. जिनागम नवनीत
उत्तरपुराण ग्रंथ में लिखा है कि मोक्षकल्याणक में इन्द्र भगवान के शरीर का संस्कार करेंगे।

क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहरवनान्तरे।
बहूनां सरसां मध्ये महामणिशिलातले।।५०९।।
स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जरः।
कृष्णकार्तिकपक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये।।५१०।।
स्वातियोगे तृतीयेद्धशुक्लध्यानपरायणः।
कृतत्रियोगसंरोधः समुच्छिन्नक्रियं श्रितः।।५११।।
हताघातिचतुष्कःसन्नशरीरो गुणात्मकः।
गन्ता मुनिसहस्त्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम्।।५१२।
तदेव पुरुषार्थस्य पर्यन्तोऽनन्तसौख्यकृत्।
अथ सर्वेऽपि देवेन्द्रा वन्हीन्द्रमुकुटस्फुरत्।।५१३।।
हुताशनशिखान्यस्ततद्देहा मोहविद्विषम्।
अभ्यर्च्य गन्धमाल्यादिद्रव्यैर्दिव्यैर्यथाविधि।।५१४।।
वन्दिष्यन्ते भवातीतमर्थ्यैर्वन्दारवः स्तवैः।
वीरनिर्वृत्तिसम्प्राप्तदिन एवास्तघातिकः।।५१५।।
भविष्याम्यहमप्युद्यत्केवलज्ञानलोचनः।
भव्यानां धर्मदेशेन विहृत्य विषयांस्ततः।।५१६।।
गत्वा विपुलशब्दादिगिरौ प्राप्स्यामि निर्वृतिम्।
मन्निर्वृतिदिने लब्धा सुधर्मः श्रुतपारगः।।५१७।।
लोकालोकावलोकैकालोकमन्त्यविलोचनम्।
तन्निर्वाणक्षणे भावी जम्बूनामात्तकेवलः।।५१८।।
अन्त्यः केवलिनामस्मिन्भरते स प्ररूप्यते।
नन्दी मुनिस्ततः श्रेष्ठो नन्दिमित्रोऽपराजितः।।५१९।।

अन्त में वे पावापुर नगर में पहुँचेंगे, वहाँ के मनोहर नाम के वन के भीतर अनेक सरोवरों के बीच में मणिमयी शिला पर विराजमान होंगे। विहार छोड़कर निर्जरा को बढ़ाते हुए वे दो दिन तक वहाँ विराजमान रहेंगे और फिर कार्तिककृष्ण चतुर्दशी के दिन रात्रि में अन्तिम समय स्वातिनक्षत्र में अतिशय देदीप्यमान तीसरे

शुक्लध्यान में तत्पर होंगे। तदनन्तर तीनों योगों का निरोधकर समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाति नामक चतुर्थ शुक्लध्यान को धारण कर चारों अघातिया कर्मों का क्षय कर देंगे और शरीररहित केवलगुणरूप होकर एक हजार मुनियों के साथ सबके द्वारा वाञ्छनीय मोक्षपद प्राप्त करेंगे ।।५०९-५१२।।

वही उनका, अनन्त सुख को करने वाला सबसे बड़ा पुरुषार्थ होगा-उनके पुरुषार्थ की वही अन्तिम सीमा होगी। तदनन्तर इन्द्रादि सब देव आवेंगे और **अग्नीन्द्र कुमार के मुकुट से प्रज्वलित होने वाली अग्नि की शिखा पर भगवान् महावीर स्वामी का शरीर रखेंगे।** स्वर्ग से लाये हुए गन्ध,माला आदि उत्तमोत्तम पदार्थों के द्वारा मोह के शत्रुभूत उन तीर्थंकर भगवान् की विधिपूर्वक पूजा करेंगे और फिर अनेक अर्थों से भरी हुई स्तुतियों के द्वारा संसार-भ्रमण से पार होने वाले उन भगवान् की स्तुति करेंगे। जिस दिन भगवान् महावीर स्वामी को निर्वाण प्राप्त होगा उसी दिन मैं भी घातिया कर्मों को नष्टकर केवलज्ञानरूपी नेत्र को प्रकट करने वाला होऊँगा और भव्य जीवों को धर्मोपदेश देता हुआ अनेक देशों में विहार करूँगा। तदनन्तर विपुलाचल पर्वत पर जाकर निर्वाण प्राप्त करूँगा। मेरे निर्वाण जाने के दिन ही समस्त श्रुतज्ञान के पारगामी सुधर्म गणधर भी लोक ओर अलोक को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञानरूपी अन्तिम लोचन को प्राप्त करेंगे और उनके मोक्ष जाने के समय ही जम्बूस्वामी केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। वह जम्बूस्वामी भरतक्षेत्र में अन्तिम केवली कहलावेंगे।।५१३से ५१९।।

(उत्तरपुराण पृ. ५६३)

७६. जिनागम नवनीत
दिव्यध्वनि का लक्षण

संपहि गंथकत्तारपरूवणं कस्सामो। वयणेण विणा अत्थपदुप्पायणं ण संभवइ,सुहुमत्थाणं सण्णाए परूवणाणुववत्तीदो। ण चाणक्खराए झुणीए अत्थपदुप्पायणं जुज्जदे, अणक्खरभासतिरिक्खे मोत्तूणण्णेसिं तत्तो अत्थावगमाभावादो। ण च दिव्वज्झुणी अणक्खरप्पिया चेव, अट्ठारस-सत्तसयभास-कुभासप्पियत्तादो।

अब ग्रन्थकर्ता की प्ररूपणा करते हैं।

शंका—वचन के बिना अर्थ का व्याख्यान सम्भव नहीं है, क्योंकि सूक्ष्म पदार्थों की संज्ञा अर्थात् संकेत द्वारा प्ररूपणा नहीं बन सकती। यदि कहा जाय कि अनक्षरात्मक ध्वनि द्वारा अर्थ की प्ररूपणा हो सकती है, सो यह भी योग्य नहीं; क्योंकि अनक्षर भाषा युक्त तिर्यंचों को छोड़कर अन्य जीवों को उससे अर्थ ज्ञान नहीं हो सकता और दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक ही हो, सो

भी नहीं है; क्योंकि वह अठारह महाभाषा एवं सात सौ लघु भाषा स्वरूप है।

(धवला पुस्तक ९ पृ. १२६)

७७. जिनागम नवनीत

श्रावण मास की प्रतिपदा वर्ष का प्रथम दिन है उसी दिन धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई है। वह तिथि युगादि भी है।

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि।।४०।।

वर्ष के प्रथम मास व प्रथम पक्ष में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के पूर्व दिन में अभिजित् नक्षत्र में तीर्थ की उत्पत्ति हुई।।४०।।

(धवला पुस्तक ९ पृ. १३०)

७८. जिनागम नवनीत

षट्खंडागम आदि ग्रन्थ पूर्ण प्रमाण हैं

एत्तो उवरि पयदं परूवेमो- लोहाइरिये सग्गलोगं गदे आयार-दिवायरो अत्थमिओ। एवं बारससु दिणयरेसु भरहखेत्तम्मि अत्थमिएसु सेसाइरिया सव्वेसिमंग-पुवाणमेगदेसभूद-पेज्जदोस-महाकम्मपयडिपाहुडादीणं धारया जादा। एवं पमाणीभूदमहरिसिपणालेण आगंतूण महाकम्मपयडिपाहुडामियजलपवाहो धरसेणभडारयं संपत्तो। तेण वि गिरिणयरचंदगुहाए-भूदबलि-पुप्फदंताणं महाकम्मपयडिपाहुडं सयलं समप्पिदं। तदो भूदबलिभडारएण सुदणईपवाहवोच्छेदभीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठं महाकम्मपयडिपाहुडमुवसंहरिऊण छखंडाणि कयाणि। तदो तिकालगोयरासेसपयत्थ विसयपच्चक्खाणंत केवलणाणप्पभावादो पमाणीभूदआइरियपणालेणागदत्तादो दिट्ठिट्ठविरोहाभावादो पमाणमेसो गंथो। तम्हा मोक्खकंखिणा भवियलोएण अब्भसेयव्वो। ण एसो गंथो थोवो त्ति मोक्खकज्जजणणं पडि असमत्थो, अमियघडसयवाणफलस्स चुलुवामियवाणे वि उवलंभादो।

यहां से आगे प्रकृतकी प्ररूपणा करते हैं- लोहाचार्य के स्वर्गलोक को प्राप्त होने पर आचारांगरूपी सूर्य अस्त हो गया। इस प्रकार भरतक्षेत्र में बारह सूर्यों के अस्तमित हो जाने पर शेष आचार्य सब अंग-पूर्वों के एकदेशभूत 'पेज्जदरोस 'और 'महाकम्मपयडिपाहुड' आदिकों के धारक हुए। इस प्रकार प्रमाणीभूत महर्षिरूप प्रणाली से आकर महाकम्मपयडिपाहुडरूप अमृत-जलप्रवाह धरसेन भट्टारक को प्राप्त हुआ। उन्होंने भी गिरिनगर की चन्द्र गुफा में सम्पूर्ण महाकम्मपयडिपाहुड भूतबलि और

पुष्पदन्त को अर्पित किया। पश्चात् श्रुतरूपी नदी प्रवाह के व्युच्छेद से भयभीत हुए भूतबलि भट्टारक ने भव्यजनों के अनुग्रहार्थ महाकम्मपयडिपाहुड का उपसंहार कर छह खण्ड (षट्खंडागम)किये। अतएव त्रिकालविषयक समस्त पदार्थों को विषय करने वाले प्रत्यक्ष अनन्त केवलज्ञान के प्रभाव से प्रमाणीभूत आचार्यरूप प्रणाली से आने के कारण प्रत्यक्ष व अनुमान से चूंकि विरोध से रहित है अतः यह ग्रन्थ प्रमाण है। इस कारण मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों को इसका अभ्यास करना चाहिये। चूंकि यह ग्रन्थ स्तोक है अतः वह मोक्षरूप कार्य को उत्पन्न करने के लए असमर्थ है, ऐसा विचार नहीं करना करना चाहिये; क्योंकि अमृत के सौ घड़ों के पीने का फल चुल्लू प्रमाण अमृत के पीने में भी पाया जाता है।

(षट्खण्डागम धवला टीका, पु. ९ पृ. १३३–१३४)

७९. जिनागम नवनीत

साधु के 28 मूलगुण भिन्न प्रकार से हैं

साधु परमेष्ठी के २८ गुण—दस सम्यक्त्वगुण, मत्यादि पाँच ज्ञानगुण और तेरह प्रकार का चारित्र, ये साधु के २८ गुण माने गये हैं। इनमें से सम्यक्त्व के दस गुण इस प्रकार हैं :—१. आज्ञासम्यक्त्व, २. मार्गसम्यक्त्व, ३. उपदेशसम्यक्त्व, ४. सूत्रसम्यक्त्व, ५. बीजसम्यक्त्व, ६. संक्षेपसम्यक्त्व, ७. विस्तारसम्यक्त्व, ८. अर्थसम्यक्त्व, ९. अव-गाढ़सम्यक्त्व, और १०. परमावगाढ़सम्यक्त्व । इनका संक्षेप में अर्थ इस प्रकार है—

१ आज्ञासम्यक्त्व--वीतराग भगवान् की आज्ञा का ही दृढ़ श्रद्धान करना।

२ मार्गसम्यक्त्व--तिरेसठ श्लाका पुरुषों का चरित सुनकर सम्यक्त्व उत्पन्न होना।

३ उपदेशसम्यक्त्व--धर्मका उपदेश सुनकर सम्यक्त्व की प्राप्ति होना।

४ सूत्रसम्यक्त्व--आचार-सूत्र को सुनकर सम्यक्त्व की प्राप्ति होना।

५ बीजसम्यक्त्व--द्वादशांग के बीज पदों को सुनकर सम्यक्त्व उत्पन्न होना।

६ संक्षेपसम्यक्त्व--तत्त्वों को संक्षेप से ही जानकर सम्यक्त्व उत्पन्न होना।

७ विस्तारसम्यक्त्व--विस्तार से द्वादशांग को सुनकर सम्यक्त्व उत्पन्न होना।

८ अर्थसम्यक्त्व--परमागम के किसी प्रवचन के अर्थ को सुनकर सम्यक्त्व उत्पन्न होना।

९ अवगाढ़सम्यक्त्व--अंगबाह्य प्रवचन का अवगाहन कर सम्यक्त्व उत्पन्न होना।

१०परमावगाढ़सम्यक्त्व—केवलज्ञान के साथ अत्यन्त अवगाढ़ सम्यक्त्व उत्पन्न होना।

मतिज्ञानादि पाँच ज्ञानगुण और पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तिरूप तेरह प्रकार का चारित्र सर्वविदित ही हैं।

(जिनसहस्रनाम संस्कृत टीका, ज्ञानपीठ से प्रकाशित प्रस्तावना में पृ. ३९)

८०. जिनागम नवनीत

पुरुष की 72 कलाओं के नाम

पुरुष की बहत्तर कलाएँ— कलानिधि नाम की व्याख्या करते हुए श्रुतसागर सूरि ने पुरुष की बहत्तर कलाओं के नाम इस प्रकार बतलाये हैं :—१. गीतकला, २. वाद्यकला, ३. बुद्धिकला ४. शौचकला, ५. नृत्यकला, ६. वाच्यकला, ७. विचारकला, ८. मंत्रकला, ९. वास्तुकला, १०. विनोदकला, ११. नेपथ्यकला, १२. विलासकला, १३. नीतिकला, १४. शकुनकला १५. क्रीडनकला, १६. चित्रकला, १७. संयोगकला, १८. हस्तलाघवकला, १९. कुसमकला, २०. इन्द्रजालकला, २१. सूचीकर्मकला, २२. स्नेहकला, २३. पानकला, २४. आहारकला, २५. विहारकला, २६. सौभाग्यकला, २७. गन्धकला, २८. वस्त्रकला, २९. रत्नपरीक्षा, ३०. पत्रकला, ३१. विद्याकला ३२. देशभाषितकला, ३३. विजयकला ३४. वाणिज्यकला, ३५. आयुधकला, ३६. युद्धकला, ३७. नियुद्धकला, ३८. समयकला ३९. वर्त्तनकला, ४०. गजपरीक्षा, ४१. तुरङ्गपरीक्षा, ४२. पुरुषपरीक्षा, ४३. स्त्रीपरीक्षा, ४४. पक्षिपरीक्षा ४५. भूमिपरीक्षा, ४६. लेपकला, ४७. काष्ठकला, ४८. शिल्पकला, ४९. वृक्षकला, ५०. छद्मकला, ५१. प्रश्नकला, ५२. उत्तरकला, ५३. शस्त्रकला, ५४. शास्त्रकला, ५५. गणितकला, ५६. पठनकला ५७. लिखितकला, ५८. वक्तृत्वकला, ५८. कवित्वकला, ६०. कथाकला, ६१. वचनकला, ६२. व्याकरणकला, ६३. नाटककला, ६४. छन्दकला, ६५. अलंकारकला, ६६. दर्शनकला, ६७. अवधानकला, ६८. धातुकला, ६९. धर्मकला, ७०. अर्थकला, ७१. कामकला, और ७२. शरीरकला।

(जिनसहस्रनाम संस्कृत टीका ज्ञानपीठ से प्रकाशित प्रस्तावना पृ. २४)

८१. जिनागम नवनीत

भवन,भवनपुर, आवास व्यतंर के कहाँ हैं ?

रज्जुकदी गुणिदव्वा णयणउदिसहरसअधियल्खेणं।
तम्मज्झे तिवियप्पा वेंतरदेवाण होंति पुरा।।५।।

४९।१९९०००।

भवणं भवणपुराणिं आवासा इय भवंति तिवियप्पा।
जिणमुहकमलविणिग्गदवेंतरपण्णत्तिणामाए।।६।।

रयणप्पहपुढवीए भयणाणिं दीवउवहिउवरिम्मि।
भवणपुराणिं दहगिरिपहुदीणं उवरि आवासा।।७।।

बारससहस्सजोयणपरिमाणं होदि जेट्ठभवणाणं।
पत्तेक्कं विक्खंभा तिण्णि संयाणं च बहलत्तं।।८।।

१२००० ।३००।

राजु के वर्ग को एक लाख निन्यानवै हजार से गुणा करने पर जो प्राप्त हो उसके मध्य में व्यन्तर देवों के तीन प्रकार के पुर होते हैं।। ५।।

जिन भगवान् के मुखरूप कमल से निकले हुए व्यन्तर प्रज्ञप्ति नामक अधिकार में भवन, भवनपुर और आवास इस प्रकार तीन प्रकार के भवन कहे गये हैं ।। ६।।

इनमें से रत्नप्रभा पृथ्वी में भवन, द्वीप-समुद्रों के ऊपर भवनपुर और द्रह एवं पर्वतादिकों के ऊपर आवास होते हैं।।७।।

उत्कृष्ट भवनों में से प्रत्येक का विस्तार बारह हजार योजन और बाहल्य तीन सौ योजनप्रमाण है ।।८।। १२०००। ३००।

(तिलोयपण्णत्ति भाग-२ पृ. ६४१)

८२. जिनागम नवनीत

सुमेरु के नंदनवन में वापी के मध्य सौधर्मेन्द्र का प्रासाद है, उनके परिवार देवों की संख्या, आसन एवं वापिका का वर्णन

वापीत्युत्पलगुल्मा च नलिना चोत्पलेति च।
उत्पलोज्ज्वलसंज्ञा च मेरोस्ताःपूर्वदक्षिणे।।२७०।

मयूरहंसक्रौञ्चाञ्द्यैर्यन्त्रैर्नित्यमलंकृताः।
मणितोरणसंयुक्ता रत्नसोपानपङ्क्तयः।।२७१।।

तासां पञ्चाशदायामस्तदर्धमपि विस्तृतिः।
दशावगाढः प्रासादस्तासां मध्ये शचीपतेः।।२७२।।

एकत्रिंशत्सगव्यूतिर्द्विषष्टिःसार्धयोजना।
आयामविस्तृती तुङ्गस्तस्य गाधोऽर्धयोजनम्।।२७३।।

आ ३१ क्रो १। वि ३१ क्रो १। उ ६२ क्रो २।
अ क्रो २। उक्तं च द्वयं त्रिलोकप्रज्ञप्तौ
(४,१९४९-५०)-

पोक्खरणीणं मज्झे सक्कस्स हवे विहारपासादो।
पणघणश्कोसुत्तुंगो तद्दलरुंदो णिरुवमाणो।।५।।

१२५।६२। १/२।

एक्कं कोसं गाढो सो णिलवो विविहकेदुरमणिज्जो।
तस्सायामपमाणे उवएसो णत्थि अम्हाणं।।६।।

सिंहासनं तु तन्मध्ये शक्रस्यामिततेजसः।
चत्वारि लोकपालानामासनानि चतुर्दिशम्।।२७४।।

पूर्वोत्तरस्यां तस्यैव चापरोत्तरतस्तथा।
सामानिकानां देवानां रम्यभद्रासनानि च।।२७५।।

४२००० । ४२००० ।

अष्टानामग्रदेवीनां पुरो भद्रासनानि च।
आसन्नपरिषत्तस्य सासना पूर्वदक्षिणे।।२७६।।

८। १२०००।

मध्यमा दक्षिणस्यां च बाह्या चापरदक्षिणे।
त्रयस्त्रिंशच्च तत्रैव पश्चात् सैन्यमहत्तराः।।२७७।।

१४०००। १६०००। ३३।

चतसृष्वात्मरक्षाणां दिक्षु भद्रासनानि च।
उपास्यमानस्तैरिन्द्र आस्ते पूर्वमुखः सुखम्।।२७८।।

८४०००। ८४०००। ८४०००। ८४०००।

उक्तं व त्रिलोकप्रज्ञप्तौ (४,१९५१-६१)-

सीहासणमइरम्मं सोहम्मिंदस्स भवणमज्झम्मि।
तस्स य चउसु दिसासुं चउपीढा लोयवालाणं।।७।।

सोहम्मिंदासणदो दक्खिणभायम्मि कणयणिम्मिविदं।
सिंहासणं विराजदि मणिगणखचिदं पडिंदस्स।।८।।
सिंहासणस्स पुरदो अट्ठाणं होंति अग्गमहिसीणं।
बत्तीससहस्साणिं वियाण पवराइ पीढाइं।।९।।

८।३२०००।

पवणीसाण दिसासुं पासे सिंहासणस्स चुलसीदी।
लक्खाणिं वरपीढा हवंति सामाणियसुराणं।।१०।।

।८४०००००।

तस्सग्गिदिसाभागे बारसलक्खाणि पढमपरिसाए।
पीढाणि होंति कंचणरइदाणिं रयणखचिदाइं।।११।।

। १२०००००।

दक्खिणदिसाविभागे मज्झिमपरिसामराण पीढाणिं।
रम्माइं रायंते चोद्दसलक्खप्पमाणाणि।।१२।।

। १४०००००।

णइरिदिदिसाविभाए बाहिरपरिसामराण पीढाणिं।
कंचणरयणमयाणिं सोलसलक्खाणि चिट्ठंति।।१३।।

।१६०००००।

तत्थ य दिसाविभाए तेत्तीससुराण होंति तेत्तीसा।
वरपीढाणि णिरंतरपुरंतमणि-किरणणियराणिं।।१४।।

सिंहासणस्स पच्छिमभागे चिट्ठंति सत्तपीढाणिं।
छक्कं महत्तराणं महत्तरीए हवे एक्कं।।१५।।

। ६। १।

सिंहासणस्स चउसु वि दिंसासु चिट्ठंति अंगरक्खाणं।
चउरासीदिसहस्सा पीढाणि विचित्तरूवाणि।।१६।।

सिंहासणम्मि तस्सिं पुव्वमुहे पइसिदूण सोहम्मो।
विविहविणोदेण जुदो पेच्छइ सेवागदे देवे।।१७।।

भृङ्गा भृङ्गनिभा चान्या कज्जला कज्जलप्रभा।
दक्षिणापरतस्त्वेताः पुष्परिण्यस्तथाविधाः।।२७९।।

श्रीकान्ता श्रीयुता चन्द्रा ततःश्रीमहितेति च।
श्रीपूर्वनिलया चैव ईशानस्यापरोत्तरे।।२८०।।

नलिनोत्तरपूर्वस्यां तथा नलिनगुल्मिका।
कुमुदाथ कुमुदाभा चैवं सौमनसेऽपि च।।२८१।।

सुमेरु के नंदनवन में वापी के मध्य सौधर्मेन्द्र का प्रासाद है, उनके परिवार देवों की संख्या, आसन एवं वापिका का वर्णन

वहाँ मेरु के पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) भाग में उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला और उत्पलोज्वला नाम की चार वापियां स्थित हैं ।।२७०।। वे मयूर, हंस और क्रौंच आदि यंत्रों से सदा सुशोभित; मणिमय तोरणों से संयुक्त तथा रत्नमय सोपानों (सीढियों) की पंक्तियों से सहित हैं।।२७१।। उनका आयाम पचास (५०) योजन, विस्तार इससे आधा (२५ यो.) और गहराई दस (१०) योजन प्रमाण है। उनके मध्य में इन्द्र का भवन अवस्थित है ।।२७२।। इस प्रासाद का आयाम और विस्तार एक कोस सहित इकतीस (३१-१/४) योजन,ऊंचाई साढ़े बासठ (६२-१/२) योजन और गहराई आधा योजन (२ कोस) मात्र है ।।२७३।। त्रिलोकप्रज्ञप्ति में कहा भी है--

वापियों के मध्य में सौधर्म इन्द्र का विहारप्रासाद स्थित है। उस अनुपम प्रासाद की ऊंचाई पांच के घन अर्थात् एक सौ पच्चीस (५×५×५=१२५) कोस और विस्तार इससे आधा (६२-१/२ कोस) है।।५।। अनेक प्रकार की ध्वजाओं से रमणीय वह प्रासाद एक कोस गहरा है। उसके आयाम के प्रमाण विषयक उपदेश हमें उपलब्ध नहीं है ।।६।।

उक्त प्रासाद के मध्य में अपरिमित तेज के धारक सौधर्म इन्द्र का सिंहासन है। उसके चारों ओर लोकपाल देवों के चार आसन स्थित हैं ।।२७४।। उसी की पूर्वोत्तर (ईशान) दिशा तथा पश्चिमोत्तर (वायव्य) दिशा में सामानिक देवों के रमणीय भद्रासन अवस्थित हैं—ईशान में ४२०००, वायव्यमें ४२०००।।२७५।। आठ (८) अग्र देवियों के भद्रासन इन्द्र के आसन के समाने हैं। उसके पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) भाग में आसनसहित अभ्यन्तर परिषद् के देव (१२०००) बैठते हैं ।।२७६।। उसकी दक्षिणी दिशा में मध्यम परिषद् (१४०००) के तथा पश्चिम-दक्षिण (नैर्ऋत्य) कोण में बाह्य परिषद् (१६०००) के देव बैठते हैं, उसी दिशा भाग में त्रायस्त्रिंश (३३) देव विराजते हैं। सेनामहत्तर देव इन्द्र के सिंहासन के पीछे स्थित रहते हैं ।।२७७।। आत्मरक्ष देवों के भद्रासन चारों दिशाओं में (पूर्व में ८४०००, दक्षिण में ८४०००, पश्चिम में ८४०००, उत्तर में ८४०००) स्थित होते हैं। उन सब देवों से सेवमान सौधर्म इन्द्र उपर्युक्त सिंहासन के ऊपर पूर्वाभिमुख होकर सुखपूर्वक स्थित रहता है।।२७८।। त्रिलोक-प्रज्ञप्ति में कहा भी है—

उस भवन के मध्य में अतिशय रमणीय सौधर्म इन्द्र का सिंहासन स्थित है। उसकी चारों दिशाओं में चार आसन लोकपाल देवों के है ।।७।। सौधर्म इन्द्र के आसन

से दक्षिण भाग में सुवर्ण से निर्मित और मणिसमूह से खचित प्रतीन्द्र का सिंहासन विराजमान है ।।८।। मध्य सिंहासन के आगे आठ (८) अग्र महिषियों के बत्तीस हजार (३२०००) उत्तम आसन जानना चाहिए।।९।।

मध्य सिंहासन के पास में वायव्य और ईशान दिशाओं में सामानिक देवों के चौरासी लाख (८४०००००) उत्तम आसन होते हैं।।१०।। उसके आग्नेय दिशा भाग में प्रथम परिषद् के सुवर्ण से रचित और रत्नों से खचित बारह लाख (१२०००००) आसन होते हैं।।११।। उसके दक्षिण दिशा विभाग में मध्यम पारिषद देवों के रमणीय चौदह लाख (१४०००००) प्रमाण आसन विराजमान हैं।।१२।। नैर्ऋत्य दिशा विभाग में बाह्य पारिषद देवों के सुवर्ण एवं रत्नमय सोलह लाख (१६०००००) आसन स्थित हैं।।१३।। उसी दिशा विभाग में त्रायस्त्रिंश देवों के निरंतर प्रकाशमान मणियों के किरणसमूह से व्याप्त तेतीस (३३) उत्तम आसन स्थित हैं।।१४।। मध्य सिंहासन के पश्चिम दिशा भाग में सात(७) आसन अवस्थित हैं। इनमें छह (६) आसन तो छह सेना महत्तरों के और एक (१) महत्तरी का है।।१५।। मध्य सिंहासन की चारों ही दिशाओं में अंगरक्षक देवों के विचित्र रूपवाले चौरासी हजार (८४०००) आसन स्थित हैं।।१६।। उस पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठकर सौधर्म इन्द्र अनेक प्रकार के विनोद के साथ सेवा में आये हुए देवों को देखता है।।१७।।

भृंगा, भृंगनिभा, कज्जला और कज्जलप्रभा ये उसी प्रकार की चार वापिकायें दक्षिण–पश्चिम (नैर्ऋत्य) कोण में अवस्थित हैं।।२७९।। श्रीकान्ता, श्रीचन्द्रा, श्रीमहिता और श्रीनिलया ये ईशान इन्द्र की चार वापिकायें पश्चिम-उत्तर (वायव्य)दिशाभाग में स्थित हैं।।२८०।। नलिना, नलिनगुल्मिका, कुमुदा और कुमुदाभा ये चार वापिकायें उत्तर-पूर्व (ईशान) कोण में स्थित हैं। इसी प्रकार से ये वापिकायें सौमनस वन में भी अवस्थित हैं।।२८१।।

(लोकविभाग पृ. ३३ से ३६ तक)

८३. जिनागम नवनीत

पाण्डुक शिला का वर्णन

चूलिकोत्तरपूर्वस्यां पाण्डुका विमला शिला।
पाण्डुकम्बलनामा च रक्तान्या रक्तकम्बला।।२८२।।
विदिक्षु क्रमशो हैमी राजती तापनीयिका।
लोहिताक्षमयी चैता अर्धचन्द्रोपमाः शिलाः।।२८३।।

अष्टोच्छ्रयाः शतं दीर्घा रुन्द्रा पञ्चाशर्तं च ताः।
शिले पाण्डुकरक्ताख्ये दीर्घे पूर्वापरेण च।।२८४।।
द्वे पाण्डुककम्बलाख्या च रक्तकम्बलसंज्ञिका।
दक्षिणोत्तरदीर्घे ताश्चास्थिरस्थिरभूमुखाः।।२८५।।
धनुःपञ्चशतं दीर्घं मूले तावच्च विस्तृतम्।
अग्रे तदर्धविस्तारं एकशोऽत्रासनत्रयम्।।२८६।।
शक्रस्य दक्षिणं तेषु वीशानस्योत्तरं स्मृतम्।
मध्यमं जिनदेवानां तानि पूर्वमुखानि च।।२८७।।
भारताः पाण्डुकायां तु रक्तायामौत्तरा जिनाः
पाण्डुकम्बलसंज्ञायां पश्चाद्वैदेहका जिनाः।।२८८।।
पूर्ववैदेहकाश्चापि रक्तकम्बलनामनि।
इन्द्रैर्बाल्येऽभिषिच्यन्ते तेषु सिंहासनेषु तु।।२८९।।

चूलिका के उत्तर-पूर्व (ईशान) भाग में निर्मल पाण्डुका शिला स्थित है। पाण्डुकम्बला, रक्ता और रक्तकम्बला नाम की ये तीन शिलायें इसी क्रम से विदिशाओं (आग्नेय,नैऋत्य एवं वायव्य) में स्थित हैं। इनमें पाण्डुका शिला सुवर्णमय, पाण्डुकम्बला रजतमय, रक्ता तपनीयमय और रक्तकम्बला लोहिताक्षमयी है। ये सब शिलायें आकार में अर्धचन्द्र के समान हैं।।२८२-८३।। वे शिलायें आठ (८) योजन ऊंची, सौ (१००) योजन आयत और पचास (५०) योजन विस्तृत हैं। इनमें पाण्डुका और रक्ता नाम की दो शिलाएं पूर्व–पश्चिम आयत तथा पाण्डुकम्बला और रक्तकम्बला नामकी दो शिलायें दक्षिण-उत्तर आयत हैं। वे शिलायें अस्थिर भूमि और स्थिर मुखवाली हैं।।२८४-८५।। इनमें से प्रत्येक शिला के ऊपर तीन–तीन आसन स्थित हैं। इनकी दीर्घता (ऊंचाई) पांच सौ (५००) धनुष और मूल में विस्तार भी उतना (५०० धनुष) ही है। उपरिम विस्तार उनका इससे आधा (२५०धनुष) है।।२८६।। उनमें दक्षिण सिंहासन सौधर्म इन्द्रका, उत्तर ईशान इन्द्र का और मध्यम जिनदेवों (तीर्थंकरों) का है। वे आसन पूर्वमुख अवस्थित हैं।।२८७।। **पाण्डुकशिला के ऊपर भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुए तीर्थंकरों का, रक्ता शिला के ऊपर औत्तर अर्थात् ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का, पाण्डुकम्बला नामक शिला के ऊपर अपरविदेहवर्ती तीर्थंकरों का तथा रक्तकम्बला नामक शिलाके ऊपर पूर्व विदेहवर्ती तीर्थंकरों का अभिषेक बाल्यावस्था में उन सिंहासनों के ऊपर इन्द्रों द्वारा किया जाता है।।२८८-८९।**

(लोकविभाग पृ. ३६)

८४. जिनागम नवनीत
ऐरावत हाथी का वर्णन

अभियोगाणं अहिवइदेवो चेट्ठेदि दक्खिणिंदेसुं।
बालकणामो उत्तरइंदेसुं पुप्फदंतो य।।२७७।।
सक्कदुगम्मि य वाहणदेवा एरावदणाम हत्थि कुव्वंति।
विक्किरियाओ लक्खं उच्छेहं जोयणा दीहं।।२७८।।
१०००००।
एदाणं बत्तीसं होंति मुहा दिव्वरयणदामजुदा।
पुह पुह रुणंति किंकिणिकोलाहलसद्दकयसोहा।।२७९
एक्केक्कमुहे चंचलचंदुज्जलचमरचारूवम्मि।
चत्तारि होंति दंता धवला वररयणभरखचिदा।।२८०।।
एक्केक्कम्मि विसाणे एक्केक्कसरोवरो विमलवारी।
एक्केक्कसरवरम्मि य एक्केक्कं कमलवणसंडा।।२८१।।
एक्केक्ककमलसंडे बत्तीस विकत्स्सरा महापउमा।
एक्केक्कमहापउमं एक्केक्कजोयणं पमाणेणं।।२८२।।
वरकंचणकयसोहा वरपउमा सुरविकुव्वणबलेणं ।
एक्केक्कमहापउमं णाडयसाला य एक्केक्का।।२८३।।
एक्केक्काए तीए बत्तीस वरच्छरा पणच्चंति।
एवं सत्ताणीया णिद्दिट्ठा बारसिंदाणं।।२८४।।
पुह पुह पइण्णयाणं अभियोगसुराण किव्विसाणं च।
संखातीदपमाणं भणिदं सव्वेसु इंदाणं।।२८५।।

दक्षिण इन्द्रों में आभियोग देवों का अधिपति देव बालक नामक और उत्तर इन्द्रों में इनका अधिपति पुष्पदन्त नामक देव होता है।।२७७।। सौधर्म और ईशान इन्द्र के वाहन देव विक्रिया से एक लाख उत्सेध योजन प्रमाण दीर्घ ऐरावत नामक हाथी को करते हैं।। २७८।। १००००० इनके दिव्य रत्नमालाओं से युक्त बत्तीस मुख होते है जो घंटिकाओं के कोलाहल शब्द से शोभायमान होते हुए पृथक् पृथक् शब्द करते हैं।।२७९।। चंचल एवं चन्द्र के समान उज्ज्वल चामरों से सुन्दर रूपवाले एक एक मुख में रत्नों के समूह से खचित धवल चार दांत होते हैं।।२८०।। एक–एक विषाण (हाथी दांत) पर निर्मल

जल से युक्त एक एक सरोवर होता है। एक–एक सरोवर में एक एक उत्तम कमल–वनखण्ड होता है।।२८१।। एक एक कमलखण्ड में विकसित बत्तीस महापद्म होते हैं और एक एक महापद्म एक एक योजन प्रमाण होता है ।।२८२।। देवों के विक्रिया बल से वे उत्तम पद्म उत्तम सुवर्ण से शोभायमान होते हैं। एकएक महापद्म पर एक–एक नाट्यशाला होती है ।।२८३।। उस एक एक नाट्यशाला में उत्तम बत्तीस अप्सरायें नृत्य करती हैं । इस प्रकार बारह इन्द्रों की सात सेनायें कही गयी हैं।। २८४।। सभी(स्वर्गों) में इन्द्रों के प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक देवों का पृथक्–पृथक् असंख्यात प्रमाण कहा गया है।।२८५।।

(तिलोयपण्णत्ति भाग–२ पृ. ८१०)

८५. जिनागम नवनीत
चन्द्र सूर्य के विमान का वर्णन

चित्रा पृथ्वी से ऊपर आठ सौ अस्सी योजन जाकर आकाश में चन्द्रों के मण्डल हैं ।।३६।। ८८०। उत्तान अर्थात् ऊर्ध्वमुखरूप से अवस्थित अर्धगोलक के सदृश चन्द्रों के मणिमय विमान हैं। उनकी पृथक् पृथक् अतिशय शीतल एवं मन्द किरणें बारह हजार प्रमाण हैं।।३७।। उनमें स्थित पृथिवी जीव चूंकि उद्योत नामकर्म के उदय से संयुक्त हैं, इसीलिये वे प्रकाशमान अतिशय शीतल मन्द किरणों से संयुक्त होते हैं।।३८।। एक योजन के इकसठ भाग करने पर छप्पन भागप्रमाण उन चन्द्रविमानों में से प्रत्येक के उपरिम तल का विस्तार व इससे आधा बाहल्य है ।।३९।। ५६/६१ २८/६१। इनकी परिधियां पृथक् पृथक् दो योजन से कुछ अधिक हैं। वे बिम्ब अकृत्रिम व अनादिनिधन हैं।।४०।। उनमें से प्रत्येक की तटवेदी चार गोपुरों से संयुक्त होती है। उसके बीच में उत्तम वेदी सहित रमणीय राजांगण होता है।।४१।। राजांगण के ठीक बीच में उत्तम रत्नमय दिव्य कूट और उन कूटों पर वेदी व चार तोरणों से संयुक्त **जिनपुर** होते है।।४२।। वे सब जिनभवन मोती व सुवर्ण की मालाओं से रमणीय और उत्तम वज्रमय किवाड़ों से संयुक्त होते हुए दिव्य चन्दोवों से सुशोभित रहते हैं।।४३।। ये जिनभवन देदीप्यमान रत्नदीपकों से सहित, अष्ट महामंगल द्रव्यों से परिपूर्ण और वन्दनमाला, चंवर व क्षुद्र घंटिकाओं के समूह से शोभायमान होते हैं।।४४।। इन जिनभवनों में स्थान–स्थान पर विचित्र रत्नों से निर्मित नाट्यसभा, अभिषेकसभा और विविध प्रकार की क्रीड़ाशालायें सुशोभित होती हैं।।४५।। वे जिनभवन समुद्र के समान गम्भीर शब्द करने वाले मर्दल, मृदंग और पटह आदि विविध प्रकार के दिव्य वादित्रों से नित्य

शब्दायमान रहते हैं ।।४६।। **उन जिनभवनों में तीन छत्र, सिंहासन, भामण्डल और चामरों से संयुक्त रत्नमयी जिनप्रतिमायें विराजमान हैं ।।४७।। जिनेन्द्रप्रासादों में श्रीदेवी, श्रुतदेवी और सब सनत्कुमार यक्षों की मनोहर मूर्तियां शोभायमान होती हैं ।।४८।।**

सब देव गाढ़ भक्ति से जल, गन्ध, फूल, तन्दुल, उत्तम भक्ष्य (नैवेद्य), दीप,धूप और फलों से परिपूर्ण उनकी पूजा करते हैं।।४९।। इन कूटों के चारों ओर समचतुष्कोण लंबे और नाना प्रकार के विन्यास से रमणीय चन्द्रों के प्रासाद होते हैं।।५०।। इनमें से कितने ही प्रासाद मरकतवर्ण, कितने ही कुन्दपुष्प, चन्द्र, हार एवं बर्फ जैसे वर्ण वाले; कोई सुवर्ण के समान वर्णवाले और दूसरे मूंगे के सदृश वर्ण से सहित हैं।।५१।। इन भवनों में उपपादमन्दिर, अभिषेकपुर, भूषणगृह, मैथुनशाला, क्रीड़ाशाला, मंत्रशाला और आस्थानशालायें (सभाभवन) स्थित रहती हैं।।५२।। वे सब प्रासाद उत्तम कोटों से सहित, विचित्र गोपुरों से संयुक्त, मणिमय तोरणों से रमणीय, बहुत प्रकार के चित्रों वाली दीवालों से युक्त, विचित्र रूपवाली उपवन–वापिकाओं से विराजमान, सुवर्णमय विशाल खम्भों से सहित और शयनासन आदि से परिपूर्ण हैं।।५३–५४।। ये दिव्य प्रासाद धूप के गन्ध से व्याप्त होते हुए अनुपम एवं शुद्ध रस, रूप, गन्ध और स्पर्श से विविध प्रकार के सुखों को देते हैं।।५५।। भवनों में कूटों से विभूषित और प्रकाशमान रत्न–किरणपंक्ति से संयुक्त सात–आठ आदि भूमियाँ शोभायमान होती हैं।।५६।। इन मन्दिरों के बीच में चन्द्र सिंहासनों पर विराजमान रहते हैं उनमें से प्रत्येक चन्द्र के चार अग्रमहिषियां (पट्ट देवियां) होती हैं ।।५७।। चन्द्राभा, सुसीमा, प्रभंकरा और अर्चिमालिनी, ये उन अग्रदेवियों के नाम हैं। इनमें से प्रत्येक की चार हजार प्रमाण परिवार देवियां होती हैं।।५८।। अग्रदेवियां अपनी अपनी परिवार देवियों के समान अर्थात् चार हजार रूपों प्रमाण विक्रिया दिखलाती हैं। प्रतीन्द्र, सामानिक, तनुरक्ष, तीनों पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विष, इस प्रकार प्रत्येक चन्द्र के परिवार देव आठ प्रकार के होते हैं।। ५९–६०।। सब इन्द्रों के एक एक प्रतीन्द्र होते हैं। वे (प्रतीन्द्र) सूर्य ही हैं। सामानिक और तनुरक्ष प्रभृति देव संख्यात प्रमाण होते हैं।।६१।। राजांगण के बाहर विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से रचित और विचित्र विन्यासरूप विभूति से सहित परिवार देवों के प्रासाद होते है।।६२।। प्रत्येक इन्द्र के सोलह हजारप्रमाण आभियोग्य देव होते हैं जो नित्य ही विक्रिया धारण करते हुए चन्द्रों के पुरतलों को वहन करते हैं ।।६३।। प्रत्येक इन्द्र के सोलह हजारप्रमाण आभियोग्य देव होते है जो नित्य ही विक्रिया धारण करते हुए चन्द्रों के पुरतलों को वहन करते हैं।।६३।। १६०००।

इनमें से सिंह, हाथी, बैल और जटा युक्त घोड़ों के रूप को धारण करने वाले तथा कुन्द-पुष्प के सदृश सफेद चार-हजार प्रमाण देव क्रम से पूर्वादिक दिशाओं में चन्द्रबिम्बों को वहन करते हैं।।६४।। चित्रा पृथिवी के उपरिम तल से ऊपर आठ सौ योजन जाकर आकाश में नित्य सूर्यनगरतल स्थित हैं।।६५।।८००। सूर्यों के मणिमय बिम्ब ऊर्ध्व अवस्थित अर्ध गोलक के सदृश हैं। इनकी पृथक् पृथक् बारह हजार प्रमाण उष्णतर किरणें होती हैं।।६६।।१२०००। चूंकि उनमें स्थित पृथिवी जीव आतप नामकर्म के उदय से संयुक्त होते हैं, इसीलिये वे प्रकाशमान उष्णतर किरणों से युक्त होते हैं ।।६७।। एक योजन के इकसठ भाग करने पर अड़तालीस भागप्रमाण उनमें से प्रत्येक सूर्य के बिम्ब के उपरिम तलों का विस्तार और तलों से आधा बाहल्य भी होता है।।६८।। ४८/६१।२४/६१। इनकी परिधियां पृथक् पृथक् दो योजन से अधिक होती हैं । वे सूर्यबिम्ब अकृत्रिम एवं अनादिनिधन हैं।।६९।। उनमें से प्रत्येक तटवेदी चार गोपुरद्वारों से सुन्दर होती है। उसके बीच में उत्तम वेदी से संयुक्त राजांगण होता है।।७०।। राजांगण के मध्य में जो उत्तम रत्नमय दिव्य कूट होते हैं उनमें सूर्यकान्त मणिमय **जिनभवन** स्थित हैं।।७१।। निपुण पुरुषों को इन मन्दिरों का सम्पूर्ण वर्णन चन्द्रपुरों के कूटों पर स्थित जिनभवनों के सदृश यहां पर भी करना चाहिये।।७२।। उनमें जो जिनप्रतिमायें विराजमान हैं उनके वर्णन का प्रकार पूर्वोक्त वर्णन के ही समान है। समस्त देव विविध प्रकार के पूजाद्रव्यों से उन प्रतिमाओं की पूजा करते हैं।।७३।। इन कूटों के चारों तरफ जो सूर्यप्रासाद हैं उनका भी वर्णन चन्द्रप्रासादों के सदृश है।।७४।। उन भवनों के मध्य में उत्तम छत्र-चँवरों से संयुक्त और अतिशय दिव्य तेज को धारण करने वाले सूर्य दिव्य सिंहासनों पर स्थित होते हैं।।७५।। द्युतिश्रुति, प्रभंकरा, सूर्यप्रभा और अर्चिमालिनी, ये चार प्रत्येक सूर्य की अग्रदेवियां होती हैं।।६।। इनमें से प्रत्येक अग्रदेवी की चार हजार परिवार-देवियां होती हैं। वे अपने अपने परिवार के समान अर्थात् चार हजार रूपों की विक्रिया ग्रहण करती है।।७७।। सामानिक, तनुरक्ष, तीनों पारिषद , प्रकीर्णक, अनीक, आभियोग्य और किल्विषिक, इस प्रकार सूर्यों के सात प्रकार परिवार देव होते हैं।।७८।। राजांगण के बाहर उत्तम रत्नों से विभूषित और प्रकाशमान तेज को धारण करने वाले समस्त परिवार-देवों के प्रासाद होते हैं।।७९।।

(तिलोयपण्णत्ति भाग-२ पृ. ६६२ से ६६७ तक)

८६. जिनागम नवनीत
सच्चे मित्र से बढ़कर संसार में कोई नहीं है

अन्नमुन्न च मित्रवन्न हितकृत कोऽप्यस्ति बन्धुःपरो।
गुह्याद् गुह्यतरं गुरोहपि न तद्वाच्यं यदस्योच्यते।।
दुःसाध्यान्यपि साध्यत्यगणयन्प्राणाश्च तत्र स्फुटो।
दृष्टान्तो मणिकेतुरेव कुरुतां तन्मित्रमीदृगिवधम् ।।१४२।।

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे श्रेणिक! इस लोक तथा परलोक में मित्र के समान हित करने वाला दूसरा नहीं है और न मित्र से बढ़कर कोई भाई है। जो बात गुरु अथवा माता-पिता से भी नहीं कही जाती ऐसी गुप्त बात मित्र से कही जाती है। मित्र अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करता हुआ कठिन से कठिन कार्य को सिद्ध कर देता है। मणिकेतु ही इस विषय का स्पष्ट दृष्टान्त है।

(उत्तरपुराण पृ. १२)

८७. जिनागम नवनीत
वचन चार प्रकार के होते हैं

किञ्चिद्धितं प्रियं चोक्तं किञ्चिच्च हितमप्रियम् ।
किञ्चित्प्रियं सदहितं परं चाहितप्रियम् ।।११०।।
अन्त्यद्वयं परित्यज्य शेषाभ्यां भाषता हितम्।
इति निश्चित्य कैलासं तदेवागम्य दर्पिणः।।१११।।

वचन चार प्रकार के होते हैं-कुछ वचन तो हित और प्रिय दोनों ही होते हैं, कुछ हित और अप्रिय होते हैं, कुछ प्रिय होकर अहित होते हैं और कुछ अहित तथा अप्रिय होते हैं। इन चार प्रकार के वचनों में अन्त के दो वचनों को छोड़कर शेष दो प्रकार के वचनों से हित का उपदेश दिया जा सकता है।

(उत्तरपुराण पृ. १०)

८८. जिनागम नवनीत
24 तीर्थंकरों के साथ मोक्ष प्राप्त मुनियों की संख्या

वीरस्यैकस्य निर्वाणं षड्विंशतिसहितस्य तु।
पार्श्वस्य सह नेमेः षट्त्रिंशता पञ्चभिः शतैः।।२८२।।

मल्लि:पञ्चशतैः सिद्धः शान्तिर्नवशतैःसह।
सैकैरष्टशतैर्धर्मो द्वादशः सैकषट्शतैः।।२८३।।
सहस्त्रैर्विमलःषड्भिरनन्तस्तैस्तु सप्तभिः।
सप्तमःपञ्चशत्यामा पद्माभोऽष्टशतैस्त्रिभिः।।२८४।।
वृषो दशसहस्त्रैस्तु मुनिभिर्मुक्तिमाश्रितः।
प्रत्येकं तु जिनाः शेषाः सहस्त्रेण समन्विताः।।२८५।।

महावीर भगवान् का एकाकी—अकेले का, पार्श्वनाथ का छब्बीस मुनियों के साथ, नेमिनाथ का पाँच सौ छत्तीस मुनियों के साथ निर्वाण हुआ है।

मल्लिनाथ पाँच सौ, शान्तिनाथ नौ सौ, धर्मनाथ आठ सौ एक, वासुपूज्य छह सौ एक, विमलनाथ छह हजार, अनन्तनाथ सात हजार, सुपार्श्वनाथ पाँच सौ, पद्मप्रभ तीन हजार आठ सौ,वृषभनाथ दश हजार और शेष तीर्थंकर एक-एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष को प्राप्त हुए हैं ।।२८३-२८५।।

(हरिवंशपुराण सर्ग–६०, पृ. ७२६-७२७)

८९. जिनागम नवनीत
16 कल्पों में मतभेद–अंतर

ये च षोडश कल्पाँश्च केचिदिच्छन्ति तन्मते।
तस्मिंस्तस्मिन् विमानानां परिमाणं वदाम्यहम्।।३६।।
द्वात्रिंशन्नियुतान्याद्ये विमानगणना भवेत्।
अष्टाविंशतिरैशाने तृतीये द्वादशापि च।।३७।।
।३२०००००। २८०००००।१२०००००।
माहेन्द्रे नियुतान्यष्टौ षण्णवत्यधिकं द्वयम्।
ब्रह्मे ब्रह्मोत्तरे चापि चतुष्कं स्यात्तदूनकम्।।३८।।
।८००००० । २०००९६। १९९९०४।
द्विचत्वारिंशदग्रं च पञ्चविंशतिसहस्त्रकम्।
लान्तवे तैः सहस्त्राणि पञ्चाशत्तु विना परे।।३९।।
।२५०४२ ।२४९५८।
विंशतिः स्युःसहस्त्राणि शुक्रे शुद्वा च विंशतिः।
चत्वारिंशत्सहस्त्राणि महाशुक्रे तु तैर्विना।।४०।।
। २००२० ।१९९८०।

शतारे त्रिसहस्त्रं स्यादेकोनापि च विंशतिः।
एकाशीतिः सहस्त्रारे शतानां त्रिंशदेकहा।।४१।।
।३०१९। १९८१ (२९८१)
चत्वारिंशानि चत्वारि शतान्यानतयुग्मके।
द्वे शते षष्टिसंयुक्ते आरणाच्युतयुग्मके।।४२।।
।४४० ।२६०।
चतुःशतानि शुद्धानि आनतप्राणतद्विके।
आरणाच्युतयुग्मे च त्रिशतान्यपरे विदुः।।४३।।
। ४००।३००।

जो कितने ही आचार्य सोलह कल्पों को स्वीकार करते हैं उनके मतानुसार मैं उस–उस कल्प में (प्रत्येक कल्प में) विमानों के प्रमाण को कहता हूं।।३६।।

उक्त विमानों की संख्या प्रथम कल्प में बत्तीस लाख (३२०००००), ऐशान कल्प में अट्ठाईस लाख (२८०००००), तृतीय सनत्कुमार कल्प में बारह लाख (१२०००००)

माहेन्द्र कल्प में आठ लाख (८०००००),ब्रह्म कल्प में छ्यानवे से अधिक दो लाख (२०००९६),ब्रह्मोत्तर कल्प में उससे (२०००९६) हीन चार लाख (४००००० - २०००९६=१९९९०४),

लान्तव कल्प में ब्यालीस अधिक पच्चीस हजार (२५०४२), आगे के कापिष्ठ कल्प में इनके बिना पचास हजार अर्थात् चौबीस हजार नौ सौ अट्ठावन (५०००० - २५०४२=२४९५८),

शुक्र कल्प में बीस हजार बीस (२००२०), महाशुक्र में उनके बिना चालीस हजार अर्थात् उन्नीस हजार नौ सौ अस्सी (४०००० - २००२०=१९९८०),

शतार में तीन हजार उन्नीस (३०१९), सहस्त्रार में एक कम तीस सौ इक्यासी,(२९८१)

आनत युगल में चार सौ चालीस(४४०) और आरण-अच्युत युगल में दो सौ साठ (२६०) हैं।।४२।। मतान्तर–

आनत और प्राणत इन दो कल्पों में शुद्ध चार सौ(४००) तथा आरण-अच्युत युगल में शुद्ध तीन सौ (३००) विमान हैं, ऐसा दूसरे आचार्य कहते है।।४३।।

(लोक विभाग पृ. १७८)

९०. जिनागम नवनीत
सौधर्म आदि स्वर्गों में विमानों का वर्णन

सोहम्मादिचउक्के कमसो अवसेसछक्कजुगलेसु।
होंति उ पुव्वत्ताइं याणविमाणाणि पत्तेयं।।११।।
शस्त्रभजनवस्त्राणि बहुधा भूषणानि च।
पार्थिवानि ध्रुवाण्येव वैक्रियाण्यध्रुवाणि तु।।२७५।।
इन्द्राणां कल्पनामानि विमानानि प्रचक्षते।
चतुर्दिशं तु चत्वारि तेषां वेद्यानि नामभिः।।२७६।।
वैडूर्यं रजतं चैव अशोकमिति पश्चिमम्।
मृषत्कसारमन्त्यं च दक्षिणेन्द्राधिवासतः।।२७७।।
रुचकं मन्दराख्यं च अशोकं सप्तपर्णकम्।
उत्तरेन्द्राधिवासेभ्यः कीर्तितानि चतुर्दिशम्।।२७८।।
दक्षिणे लोकपालानां नामान्युक्तानि मन्दरे।
तान्येषां वै विमानानि त्रिषु कल्पेषु कल्पयेत्।।२७९।।
सौम्यं च सर्वतोभद्रं समितं शुभमित्यपि।
उत्तरे लोकपालानां संज्ञाः कल्पद्वये मताः।।२८०।।
होदि दु सयंपहक्खं वरजेट्ठसयंजणाणि वग्गू य।
ताण पहाणविमाण सेसेसुं दक्खिणिंदेसुं।।१२।।
सोम्मं सव्वदभद्दा सुभद्दसमिदाणि सोमपहुदीणं।
होंति पहाणविमाणा सव्वेसिं उत्तरिंदाणं।।१३।।
ताणं विमाणसंखा उवएसो णत्थि कालदोसेण।
ते सव्वे वि दिगिंदा तेसु विमाणेसु कीडंति।।१४।।

सौधर्म आदि पृथक्–पृथक् चार कल्पों और शेष छह युगलों में से प्रत्येक में क्रम से पूर्वोक्त यानविमान होते हैं।।११।।

शस्त्र, भोजन, वस्त्र और बहुत प्रकार के भूषण ये पृथिवीनिर्मित और वैक्रियिक भी होते हैं। इनमें से पृथिवीमय स्थिर और वैक्रियिक अस्थिर होते हैं ।।२७५।। इन्द्रों के विमान कल्पनाम वाले कहे जाते हैं। उनकी चारों दिशाओं में वैडूर्य,रजत,अशोक और अन्तिम मृषत्कसार इन नामों वाले चार विमान जानने चाहिये। ये विमान दक्षिण

इन्द्रों के निवास स्थान की चारों दिशाओं में होते हैं।।२७६-२७७।। रुचक, मन्दर, अशोक और सप्तपर्ण ये चार विमान उत्तर इन्द्रों के निवास स्थानों की चारों दिशाओं में कहे गये हैं ।।२७८।।

उक्तं च (ति.प. ८-३००)-

मन्दर पर्वत की प्ररूपणा में (१-२६० व २६२ आदि में) दक्षिण (सौधर्म) इन्द्र के लोकपालों के विमानों के जो नाम कहे गये हैं वे तीन कल्पों में उनके विमानों के नाम जानना चाहिये।।२७९।। कहा भी है– लान्तव आदि शेष दक्षिण इन्द्रों में स्वयंप्रभ, उत्तम ज्येष्ठशत, अंजन और वल्गु ये प्रधान विमान जानना चाहिये।।१२।।सौम्य, सर्वतोभद्र, समित और शुभ ये उत्तर में दो कल्पों में लोकपालों के प्रधान विमानों के नाम माने गये हैं ।।२८०।।

कहा भी है–उक्तं च (ति.प.८,३०१-२)-

सौम्य, सर्वतोभद्र, सुभद्र और समित ये सब उत्तर इन्द्रों के सोम आदि लोकपालों के प्रधान विमान होते हैं ।।१३।। उनके विमानों की संख्या का उपदेश कालदोष से नष्ट हो गया है। वे सब लोकपाल उन विमानों में क्रीड़ा किया करते हैं ।।१४।।

(लोकविभाग पृ. २०६)

९१. जिनागम नवनीत
चतुर्थ गुणस्थान में सम्यक्चारित्र के बिना भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होता है।

समेतमेव सम्यक्त्वज्ञानाभ्यां चरितं मतम्।
स्यातां विनापि ते तेन गुणस्थाने चतुर्थके।। ५४३।।

सम्यक्चारित्र–सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से सहित ही होता है परन्तु सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान चतुर्थगुणस्थान में सम्यक्चारित्र के बिना भी होते हैं।।

(उत्तरपुराण पर्व, ७४ पृ. ४८०)

९२. जिनागम नवनीत
गर्भ कल्याणक में कुबेर माता-पिता का तीर्थ जल से अभिषेक करते हैं, पूजा करते हैं।

जिनेन्द्रपितरौ ततो धनपतिः सुरेन्द्राज्ञया
स्वभक्तिमरतोऽपि च स्वयमुपेत्य तीर्थोदकैः।

शुभैःसमभिषिच्य तौ सुरभिपारिजातोद्भवैः
सुगन्धवरभूषणैर्भुवनदुर्लभैःप्रार्चयत्।।१।।

तदनन्तर इन्द्र की आज्ञा और अपनी भक्ति के भार से कुबेर ने स्वयं आकर शुभ तीर्थजल से भगवान् के माता-पिता का अच्छी तरह अभिषेक किया और मनोज्ञ कल्पवृक्षों से उत्पन्न अन्यजन दुर्लभ सुगन्ध और उत्तमोत्तम आभूषणों से उनकी पूजा की।।१।।

(हरिवंशपुराण सर्ग ३८ पृ. ४७८)

९३. जिनागम नवनीत
पृथ्वी के छत्तीस (36) भेदों का स्पष्टीकरण

''मृतिका वालिका चैव शर्करा चोपलःशिला।
लवणायस्तथा ताम्रं त्रपु सीसकमेव च।।१।।
रूप्यं सुवर्णं वज्रञ्च हरितालं च हिङ्गुलम्।
मनःशिला तथा तुत्थमञ्जनं च प्रवालकम्।।२।।
झीरोलकाभ्रकं चैव मणिभेदाश्च बादराः।
गोमेदो रुजकोऽङ्कश्च स्फटिको लोहितप्रभः।।३।।
वैडूर्य्यं चन्द्रकान्तश्च जलकान्तो रविप्रभः।
गैरिकश्चन्दनश्चैव वर्वरो बक एव च।।४।।
मोचो मसारगल्पश्च सर्व एते प्रदर्शिताः।
संरक्ष्याः पृथिवीजीवाः मुनिभिः ज्ञानपूर्वकम्।।५।।

वालिका रूक्षाङ्गा नद्युद्भवा। शर्करा परुषरूपा,त्र्यस्त्रचतुरस्त्रादिरूपा। उपलो वृत्तपाषाणः। शिला बृहत्पाषाणः। त्रपु वङ्गम्। अञ्जनं सौवीराञ्जनम्। झीरोलका अभ्रवालुका चिक्यचिक्यरूपा। गोमेदः कर्केतनमणिः गोरोचनावर्णः। रुजको राजवर्तमणिरतसीपुष्पवर्णः। अङ्क पुलकमणिः प्रवालवर्णः। स्फटिकमणिः स्वच्छरूपः। रोहितप्रभः पद्मरागः। वैडूर्य्यं मयूरकण्ठवर्णम्। जलकान्त उदकवर्णः। रविप्रभः सूर्यकान्तः। गैरिको रूधिराख्यमणिः गैरिकवर्णः। चन्दनः श्रीखण्डसमगन्धवर्णो मणिः। वर्वरो मरकतमणिः। बकःपुष्परागमणिः बकवर्णः। मोचो नीलमणिः कदलीपत्रवर्णः। मसारगल्पो। मसृणपाषाणमणिः विद्रुममणिवर्णः। शर्करोपलशिलावज्रप्रवालवर्जिताः शुद्धपृथिवीविकाराः। शेषाः खरपृथिवीविकाराः। एतेष्वेव च पृथिव्यष्टकमन्तर्भवति। तत्किम्? मेर्वादिशैलाः, द्वीपाः, विमानानि, भवनानि, वेदिकाः, प्रतिमाः, तोरणस्तूप-चैत्यवृक्षजम्बूशाल्मलिधातक्यः, रत्नाकरादयश्च।

एवं विलोडितं यत्र तत्र विक्षिप्तं वस्त्रादिगालितं जलमाप उच्यते। अप्कायिक-जीवपरिहृतमुष्णं च जलम् अप्कायः प्रोच्यते। अप्कायो विद्यते यस्य स अप्कायिकः। अपः कायत्वेन या गृहीष्यति विग्रहगतिप्राप्तो जीवः स अप्जीवः कथ्यते।

इतस्ततो विक्षिप्तं जलादिसिक्तं वा प्रचुरभस्मप्राप्तं वा मनाक्तेजोमात्रं तेजःकथ्यते। भस्मादिकं तेजसा परित्यक्तं शरीरं तेजस्कायो निरूप्यते। तद्विराधने दोषो नास्ति, स्थावरकायनामकर्मोदयरहितत्वात्। तेजः कायत्वेन गृहीतं येन सः तेजस्कायिकः। विग्रहगतौ प्राप्तो जीवस्तेजोमध्येऽवतरिष्यन् तेजोजीवः प्रतिपाद्यते।

वायुकायिकजीवसम्मूर्च्छनोचितो वायुर्वायुमात्रं वायुरुच्यते। वायुकायिकजीव-परिहृतः सदा विलोडितो वायुर्वायुकायः कथ्यते। वायुः कायत्वेन गृहीतो येन स वायुकायिकः कथ्यते। वायुं कायत्वेन गृहीतुं प्रस्थितो जीवो वायुजीव उच्यते।

सार्द्रः छिन्नो भिन्नो मर्दितो वा लतादिर्वनस्पतिरुच्यते। शुष्कादिर्वनस्पतिर्वनस्पति-कायः। जीवसहितो वृक्षादिर्वनस्पतिकायिकः। विग्रहगतौ सत्यां वनस्पतिर्जीवः वनस्पतिजीवो भण्यते।

प्रत्येकं चतुर्षु भेदेषु मध्ये पृथिव्यादिकं कायत्वेन गृहीतवन्तो जीवा विग्रहगतिं प्राप्ताश्च प्राणिनः स्थावरा ज्ञाताव्याः, तेषामेव पृथिव्यादिस्थावरकायनामकर्मोदय-सद्भावात्, न तु पृथिव्यादयः पृथिवीकायादयच स्थावराः कथ्यन्ते, अजीवत्वात् कर्मोदयभावाभावाच्च।

पृथ्वी के छत्तीस भेद हैं-

मिट्टी, रेत, कंकड़, पत्थर, शिला,नमक, लोहा, तांबा,रांगा, सीसा, चाँदी, सोना, हीरा, हरताल, हिंगुल, मनःशिला गेरू, तूतिया, अञ्जन, प्रवाल, झीरोलक, अभ्रक, गोमेद, राजवर्तमणि, पुलकमणि, स्फटिकमणि, पद्मरागमणि, वैडूर्यमणि, चन्द्रकात, जलकान्त, सूर्यकान्त, गैरिकमणि, चन्दनमणि, मरकतमणि, पुष्परागमणि, नीलमणि, विद्रुममणि आदि के भेद से पृथिवी के छत्तीस भेद हैं। ज्ञान (विवेक)पूर्वक मुनिगणों को इन जीवों की रक्षा करनी चाहिए।।१-५।।

नदी से उत्पन्न रुक्ष, अंगवाली बालिका है। कठोर तीन, चार कोनों वाली शर्करा कहलाती हैं। गोल पाषाण उपल कहलाता है, वृहत्पाषाण शिला है। बङ्ग को त्रपु कहते हैं, सौवीरांजन को अञ्जन, चक-चक करने वाली अभ्रबालुका को झीरोलका कहते हैं। गोरोचन वर्णवाली गोमेद कर्केतन मणि है। अतसी पुष्प के समान वर्णवाली राजवर्तमणि रुजक कहलाती है। प्रवालवर्ण पुलकमणि,अङ्क कहलाती है। स्वच्छस्वरूप स्फटिकमणि है। रोहित प्रभावाली पद्मरागमणि, मयूर के कण्ठ के समान वर्णवाली वैडूर्यमणि, पानी के समान वर्णवाली जलकान्तमणि,सूर्यसमप्रभावाली सूर्यकान्तमणि,गेरु के समान लाल

रुधिराख्यमणि,चन्दनश्रीखण्ड के समान गन्ध और वर्णवाली चन्दनमणि और मरकतमणि को वर्वर कहते हैं। बगुले के समान वर्णवाली पुष्परागमणि है। कदलीपत्र वर्ण वाली नीलमणि या मोचमणि है। मसारगल्प कोमल पाषाणमणि हैं। मूंगे के समान वर्णवाली विद्रुममणि है। शर्करा, उपल, शिला, वज्र और प्रवाल को छोड़कर शेष पृथिवी शुद्ध पृथ्वी का विकार है। शेष खरपृथ्वी के विकार हैं । इन्हीं पृथिवियों में आठ पृथिवियों का अन्तर्भाव हो जाता है।

शंका–वे आठ पृथिवियाँ कौन सी हैं ?

उत्तर–मेरु आदि पर्वत, द्वीप, विमान, भवन, वेदिका, प्रतिमा, तोरण, स्तूप, चैत्यवृक्ष, जम्बूवृक्ष, शाल्मलिवृक्ष,धातकीवृक्ष और समुद्र आदि भूमियाँ इनमें गर्भित हो जाती हैं।

बिलोड़ा गया, इधर उधर फैलाया गया और वस्त्र से गालित (छाना हुआ) पानी **जल** कहा जाता है। जलकायिक जीवों से छोड़ा गया पानी व उष्ण पानी **जलकाय** कहा जाता है। जिसमें जल जीव रहता है उसे **जलकायिक** कहते हैं। जो आगे जलकायिक होगा अर्थात् जल पर्याय को ग्रहण करेगा, ऐसा विग्रह गति में रहने वाला जीव **जलजीव** कहलाता है।

इधर–उधर फैली हुई या जिस पर जल सींच दिया गया है या जिसका बहुभाग भस्म बन चुका है ऐसी अग्नि को **अग्नि** कहते हैं। अग्निजीव के द्वारा छोड़ी गई भस्म आदि **अग्निकाय** कहलाते हैं । इनकी विराधना में दोष नहीं होता, क्योंकि यह जीव रहित है, जिसमें अग्निजीव विद्यमान है, उसे **अग्निकायिक** कहते हैं। विग्रहगति को प्राप्त वह जीव **अग्निजीव** कहलाता है जिसके अग्नि नामकर्म का उदय है और जो आगे अग्निशरीर को ग्रहण करेगा।

जिसमें वायुकायिक जीव आ सकता है ऐसी वायु को अर्थात् केवल वायु को **वायु** कहते हैं। वायुकायिक जीव के द्वारा छोड़ी गई, बीजना (पंखा) आदि से चलाई गई हवा **वायुकाय** कहलाती है। वायुजीव जिसमें मौजूद है, ऐसी वायु **वायुकायिक** कही जाती है। विग्रहगति को प्राप्त,वायु को शरीररूप से ग्रहण करने वाला जीव **वायुजीव** है।

छेदी गई, भेदी गई या मर्दित की गई गीली लता आदि **वनस्पति** है। सूखी वनस्पति जिसमें वनस्पति जीव नहीं है **वनस्पतिकाय** है। सजीववृक्ष आदि **वनस्पतिकायिक** हैं। विग्रहगतिवर्ती वह जीव **वनस्पतिजीव** कहलाता है जिसके वनस्पतिनामकर्म का उदय है तथा जो आगे वनस्पति को शरीर रूप से ग्रहण करेगा।

प्रत्येक काय के चार भेदों में से अन्तिम दो, जैसे पृथिवी आदिक को कायरूप से

ग्रहण किये हुए पृथिवीकायिक जीव तथा विग्रहगति को प्राप्त पृथिवीजीव स्थावर होते हैं,ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि उन्हीं के पृथिवी आदिक स्थावरकाय नामकर्म के उदय का सद्भाव है और पहले दो पृथिवी व पृथिवीकाय स्थावर नहीं कहे जाते, क्योंकि अजीव होने से उनके स्थावरनामकर्म के उदय का अभाव है।

(तत्त्वार्थवृत्ति अध्याय–२ सूत्र १३, पृ. १९८ से २०० तक)

९४. जिनागम नवनीत
वर्ग, वर्गणा एवं स्पर्द्धक का लक्षण

अब परमाणोरविभागप्रतिच्छेदरूपशक्तिसमूहो वर्ग इत्युच्यते। वर्गाणां समूहो वर्गणा भण्यते। वर्गणासमूहलक्षणानि स्पर्द्धकानि च कानिचिन्न संति। अथवा कर्मशक्तेः क्रमेण विशेषवृद्धिः स्पर्द्धकलक्षणं। तथा चोक्तं वर्गवर्गणास्पर्द्धकानां त्रयाणां लक्षणं–

''वर्गः शक्तिसमूहोऽणोर्बहूनां वर्गणोदिता।
वर्गणानां समूहस्तु स्पर्द्धकं स्पर्द्धकापहैः।।

परमाणु के अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्ति के समूह को वर्ग कहते हैं और वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं तथा वर्गणा के समूह को स्पर्धक कहते हैं अथवा कर्म की शक्ति में क्रम से विशेष–विशेष वृद्धि होना स्पर्धक का लक्षण है।

इसी प्रकार से वर्ग,वर्गणा और स्पर्धक इन तीनों का लक्षण कहा गया है–

अणु की शक्ति समूह का नाम वर्ग है, बहुत से वर्गों का समूह वर्गणा है और वर्गणाओं के समूह का नाम स्पर्धक है ऐसा स्पर्धकों के नष्ट करने वाले जिनेन्द्रदेव ने कहा है। ये वर्ग,वर्गणा और स्पर्धक निश्चयनय से कुछ भी जीव के नहीं हैं।

(समयसार पूर्वार्ध पृ. २११, २१२)

९५. जिनागम नवनीत
28 मूलगुण धारण करना छेदापस्थापना चारित्र है
(प्रवचनसार ग्रंथ से)

अथाविच्छिन्नसामायिकाधिरूढोऽपि श्रमणः कदाचिच्छेदोपस्थापनमर्हतीत्युपदिशति–

वदसमिदिंदियरोधो लोचावस्सयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेगभगत्तं च।।२०८।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि।।२०९।। (जुम्मं)

व्रतसमितीन्द्रियरोधो लोचावश्यकमचेलमस्नानम् ।
क्षितिशयनमदन्तधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तं च।।२०८।।
एते खलु मूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः।
तेषु प्रमत्तः श्रमणः छेदोपस्थापका भवति। २०९।। (युग्मम्)

सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानलक्षणेकमहाव्रतव्यक्तिवशेन हिंसानृतस्तेयाब्रह्म-परिग्रहविरत्यात्मकं पञ्चतयं व्रतं तत्परिकरश्च पञ्चतयी समितिः पञ्चतय इन्द्रियरोधो लोचः षट्तयमावश्यकमचेलक्यमस्नानं क्षितिशयनमदन्तधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तश्चैवं एते निर्विकल्पसामायिकसंयमविकल्पत्वात् श्रमणानां मूलगुणा एव। तेषु यदा निर्विकल्पसामायिकसंयमाधिरूढत्वेनानभ्यस्ताविकल्पत्वात्प्रमाद्याति तदा केवलकल्याणमात्रार्थिनः कुण्डलवलयांगुलीयादिपरिग्रहः किल श्रेयान् , न पुनः सर्वथा कल्याणलाभ एवेति संप्रधार्य विकल्पेनात्मानमुपस्थापयन् छेदोपस्थापको भवति।।२०८-२०९।।

अविच्छिन्न सामायिक में आरूढ़ होने पर भी श्रमण कदाचित् छेदोपस्थापना के योग्य है, सो कहते हैं :—

अन्वयार्थ-(व्रतसमितिन्द्रियरोधः) व्रत, समिति, इन्द्रियरोध,(लोचावश्यकम्) लोच , आवश्यक,(अचेलम्) अचेलत्व, (अस्नानं) अस्नान,(क्षितिशयनम्) भूमिशयन, (अदंतधावनं) अदंतधावन, (स्थितिभोजनम्) खड़े खड़े भोजन, (च) और (एकभक्तं)एक बार आहार (एते) यह (खलु) वास्तव में (श्रमणानां मूलगुणाः) श्रमणों के मूलगुण (जिनवरैः प्रज्ञप्ताः) जिनवरों ने कहे हैं, (तेषु) उनमें (प्रमत्तः) प्रमत्त होता हुआ (श्रमणः) श्रमण (छेदोपस्थापकःभवति)छेदोपस्थापक होता है।

टीका—सब सावद्ययोग के प्रत्याख्यानस्वरूप एक महाव्रत है उसके विशेष अथवा भेद—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह की विरतिस्वरूप पांच महाव्रत तथा उसी का परिकरभूत पांच प्रकार की समिति, पाँच प्रकार का इन्द्रियरोध, लोच, छह प्रकार के आवश्यक, अचेलकत्व (नग्नता) अस्नान, भूमिशयन, अदंतधावन (दांतुन न करना),खड़े खड़े भोजन, और एक बार आहार लेना, इस प्रकार यह (अट्ठाईस) एक अभेद सामायिक संयम के १ विकल्प (भेद) होने से श्रमणों के मूलगुण ही हैं। जब श्रमण एक सामायिक संयम में आरूढ़ता के कारण जिसमें भेदरूप आचरण सेवन नहीं है, ऐसी दशा से च्युत होता है, तब ' केवल सुवर्ण मात्र के अर्थी को कुण्डल, कंकण, अंगूठी आदि का ग्रहण करना (भी) श्रेय है, किन्तु ऐसा नहीं है कि (कुण्डल इत्यादि ग्रहण कभी न करके) सर्वथा स्वर्ण की ही प्राप्ति करना ही श्रेय है ' ऐसा विचार करके वह मूलगुणों में भेदरूप से अपने को स्थापित करता हुआ अर्थात् मूलगुणों में भेदरूप से आचरण करता हुआ छेदोपस्थापक होता है।।२०८ । २०९ ।।

श्री जयसेनाचार्य कृत टीका

अथ निर्विकल्पसामायिकसंयमे यदा च्युतो भवति तदा सविकल्पं छेदोपस्थापनचारित्रमारोहतीति प्रतिपादयति-

(वदसमिदिंदियरोधो) व्रतानि च समितयश्चेन्द्रियरोधश्च व्रतसमितीन्द्रियरोधः। (लोचावस्सयं)लोचं चावश्यकानि च लोचावश्यकम्। ''समाहारस्यैकवचनं '' (अचेलमण्हाणं खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च) अचेलकास्नानक्षिति-शयनादन्तधावनस्थितिभोजनैकभक्तानि। (एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता) एते खलु स्फुटं अष्टाविंशतिमूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः (तेषु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि) तेषु मूलगुणेषु यदा प्रमत्तः च्युतो भवति। सः कः। श्रमणस्तपोधनस्तदाकाले छेदोपस्थापको भवति। छेदो व्रतखण्डने सति पुनरप्युपस्थापकश्छेदोपस्थापक इति। तथाहि—निश्चयेन मूलमात्मा तस्य केवलज्ञानाद्यनन्तगुणा मूलगुणास्ते च निर्विकल्प-समाधिरूपेण परमसामायिकाभिधानेन निश्चयैकव्रतेन मोक्षबीजभूतेन मोक्षे जाते सति सर्वे प्रकटा भवन्ति। तेन कारणेन तदेव सामायिकं मूलगुणव्यक्तिकारणत्वात् निश्चयमूलगुणो भवति। यदा पुनर्निर्विकल्पसमाधौ समर्थो न भवत्ययं जीवस्तदा यथा कोऽपि सुवर्णार्थी पुरुषः सुवर्णमलभमानस्तत्पर्यायानपि कुण्डलादीन् गृह्णाति न च सर्वथा त्यागं करोति, तथायं जीवोऽपि निश्चयमूलगुणाभिधानपरमसमाध्यभावे छेदोपस्थापनं चारित्रं गृह्णाति। छेदे सत्युपस्थापनं छेदोपस्थापनम्। अथवा छेदेन व्रतभेदेनोपस्थापनं छेदोपस्थापनम्। तच्च संक्षेपेण पंचमहाव्रतरूपं भवति। तेषां व्रतानां च रक्षणार्थं पंचसमित्यादिभेदेन पुनरष्टाविंशतिमूलगुणभेदा भवन्ति। तेषां च मूलगुणानां रक्षणार्थं द्वाविंशतिपरीषहजय-द्वादशविधतपश्चरणभेदेन चतुस्त्रिंशदुत्तरगुणा भवन्ति तेषां च रक्षणार्थं देवमनुष्यतिर्यगचेतनकृतचतुर्विधोपसर्गजयद्वादशानुप्रेक्षा-भावनादयश्चेत्य-भिप्रायः।।२०८-२०९।।

उत्थानिका- आगे कहते हैं कि जब अभेदरूप सामायिक संयम में ठहरने को असमर्थ होकर साधु उससे गिरता है तब भेदरूप छेदोपस्थापन चारित्र में जाता है-

गाथार्थः-(वदसमिदिंदियरोधो) पांच महाव्रत,पांच इन्द्रियों का निरोध (लोचावस्सं) केशलोंच,छः आवश्यक कर्म (अचेलमण्हाणं) नग्नपना,स्नान न करना, (खिदिसयणमदंतयणं) पृथ्वी पर सोना, दन्तवन न करना (ठिदिभोयणमेयभत्तं च) खड़े होकर भोजन करना और एक बार भोजन करना (एदे) ये (समणाणं मूलगुणा) साधुओं के अट्ठाईस मूलगुण (खलु) वास्तव में (जिणवरेहिं पण्णत्ता) जिनेन्द्रों ने कहे हैं। (तेसु पमत्तो) इन मूलगुणों में प्रमाद करने वाला (समणा) साधु (छेदोवट्ठावगो) छेदोपस्थापक (होदि) होता है।

टीकार्थ—निश्चयनय से मूल नाम आत्मा का है उस आत्मा के केवलज्ञानादि अनंतगुण मूलगुण हैं। ये सब मूलगुण उस समय प्रगट होते हैं जब भेद-रहित समाधिरूप परम सामायिक निश्चय एक व्रत के द्वारा (जो मोक्ष का बीज है) मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इस कारण से वही सामायिक आत्मा के केवलज्ञानादि मूलगुणों को प्रगट करने के कारण होने से निश्चय मूलगुण है। जब यह जीव अभेदरूप समाधि में (सामायिक चारित्र में) ठहरने को समर्थ नहीं होता है तब भेदरूप चारित्र को ग्रहण करता है चारित्र का सर्वथा त्याग नहीं करना,जैसे कोई भी सुवर्ण का चाहने वाला पुरुष सुवर्ण को न पाता हुआ उसकी कुण्डल आदि अवस्था विशेषों को ही ग्रहण कर लेता है, सर्वथा सुवर्ण का त्याग नहीं करता है। तैसे यह जीव भी निश्चय मूलगुण नाम की परम समाधि-अर्थात् अभेद सामायिक चारित्र का लाभ न होने पर छेदोपस्थापना नाम अर्थात् भेदरूप चारित्र को ग्रहण करता है। छेद होने पर फिर स्थापन करना छेदोपस्थापना है। अथवा छेद से अर्थात् व्रतों के भेद से चारित्र को स्थापन करना सो छेदोपस्थापना है। वह छेदोपस्थापना संक्षेप से पांच महाव्रतरूप है। उन्हीं व्रतों की रक्षा के लिए पांच समिति आदि के भेद से उसके अट्ठाईस मूलगुण भेद होते है। उन ही मूलगुणों की रक्षा के लिए २२ परीषहों का जीतना व १२ प्रकार तपश्चरण करना ऐसे चौंतीस उत्तरगुण होते हैं। इन उत्तर गुणों की रक्षा के लिये देव,मनुष्य, तिर्यंच व अचेतन कृत चार प्रकार उपसर्ग का जीतना व बारह भावनाओं का भावना आदि कार्य किये जाते है ।।२०८-२०९।।

(प्रवचनसार चारित्र अधिकार-तृतीय अ., पृ. ५०४ से ५०६ तक)

२८ मूलगुण धारण करना छेदोपस्थापना चारित्र

(षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक-१)

संयममार्गणप्रतिपादनार्थमाह-

संजमाणुवादेण अत्थि संजदा सामाइय-छेदोवट्ठावण-सुद्धिसंजदा परिहार-सुद्धि-संजदा सुहुम-सांपराइय-सुद्धि-संजदा जहाक्खाद-विहार-सुद्धि-संजदा संजदासंजदा असंजदा चेदि।।१२३।।

अत्राप्यभेदापेक्षया पर्यायस्य पर्यायिव्यपदेशः।सम् सम्यक् सम्यग्दर्शनज्ञानानुसारेण यताः बहिरङ्गान्तरङ्गास्रवेभ्यो विरताःसंयताः। सर्वसावद्ययोगात् विरतोऽस्मीति सकलसावद्ययोगविरतिः सामायिकशुद्धिसंयमो द्रव्यार्थिकत्वात् । एवं विधैकव्रतो मिथ्यादृष्टिः किन्न स्यादिति चेन्न, आक्षिप्ताशेषविशेषसामान्यर्थिनो नयस्य सम्यग्दृष्टित्वाविरोधात्। आक्षिप्ताशेषविशेषरूपमिदं सामान्यमिति कुतोऽवसीयत इति चेत्सर्वसावद्ययोगोपादानात्। नह्येकस्मिन् सर्वशब्दः प्रवर्तते विरोधात्।

स्वान्तर्भावि ताशेषसंयमविशेषैकयमः सामायिकशुद्धिसंयत इति यावत्। तस्यैकस्य व्रतस्य छेदेन द्वित्र्यादिभेदेनोपस्थापनं व्रतसमारोपणं छेदोपस्थापनशुद्धिसंयमः। सकल व्रतानामेकत्वमापाद्य एकयमोपादानाद् द्रव्यार्थिकनयः सामायिकशुद्धिसंयमः। तदैवैकं व्रतं पञ्चधा बहुधा व विपाट्य धारणात् पर्यायार्थिकनयः, छेदोपस्थापनशुद्धिसंयमः। निशितबुद्धिजनानुग्रहार्थं द्रव्यार्थिकनयदेशना, मन्दधियामनुग्रहार्थं पर्यायर्थिकनयदेशना। ततो नानयोः संयमयोरनुष्ठानकृतो विशेषोऽस्तीति। द्वितयदेशनानुगृहीत एक एव संयम इति चेन्नैष दोषः, इष्टत्वात्। अनेनैवाभिप्रायेण सूत्रे पृथक् न शुद्धिसंयतग्रहणं कृतम्।

अब संयममार्गणा के प्रतिपादन करने के लिये सूत्र कहते हैं-

संयममार्गणा के अनुवाद से सामायिकशुद्धिसंयत, छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहार-शुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपराय-शुद्धि-संयत, यथाख्यात-विहार-शुद्धि-संयत ये पांच प्रकार के संयत तथा संयतासंयत और असंयत जीव होते हैं।।१२३।।

यहाँ पर भी अभेद की अपेक्षा से पर्याय का पर्यायीरूप से कथन किया है। 'सम्' उपसर्ग सम्यक् अर्थ का वाची है, इसलिये सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक 'यताः' अर्थात् जो बहिरंग और अन्तरंग आश्रवों से विरत हैं उन्हें संयत कहते हैं।

'मैं सभी प्रकार के सावद्ययोग से विरत हूँ' इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा सकल सावद्ययोग के त्याग को सामायिक-शुद्धि संयम कहते हैं।

शंका—इस प्रकार एक व्रत का नियम वाला जीव मिथ्यादृष्टि क्यों नहीं हो जायेगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिसमें संपूर्ण चारित्र के भेदों का संग्रह होता है, ऐसे सामान्यग्राही द्रव्यार्थिक नय को समीचीन दृष्टि मानने से कोई विरोध नहीं आता है।

शंका—यह सामान्य संयम अपने संपूर्ण भेदों का संग्रह करने वाला है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'सर्वसावद्ययोग' पद के ग्रहण करने से ही, यहां पर अपने संपूर्ण भेदों का संग्रह कर लिया गया है, यह बात जानी जाती है। यदि यहां पर संयम के किसी एक भेद की ही मुख्यता होती तो 'सर्व' शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता था, क्योंकि ऐसे स्थल पर 'सर्व' शब्द के प्रयोग करने में विरोध आता है।

इस कथन से यह सिद्ध हुआ कि जिसने संपूर्ण संयम के भेदों को अपने अन्तर्गत कर लिया है ऐसे अभेदरूप से एक यम को धारण करने वाला जीव सामायिक-शुद्धि-संयत कहलाता है।

उस एक व्रत का छेद अर्थात् दो, तीन आदि के भेद से उपस्थापन करने को अर्थात् व्रतों के आरोपण करने को छेदोपस्थापना-शुद्धि-संयम कहते हैं। संपूर्ण व्रतों को सामान्य

की अपेक्षा एक मानकर एक यम को ग्रहण करने वाला होने से सामायिक-शुद्धि-संयम द्रव्यार्थिकनयरूप है और उसी एक व्रत को पांच अथवा अनेक प्रकार के भेद करके धारण करनेवाला होने से छेदोपस्थापनाशुद्धि-संयम पर्यायार्थिकनयरूप है। यहाँ पर तीक्ष्णबुद्धि मनुष्यों के अनुग्रह के लिये पर्यायार्थिकनय का उपदेश दिया गया है और मन्दबुद्धि प्राणियों का अनुग्रह करने के लिये द्रव्यार्थिकनय का उपदेश दिया गया है इसलिये इन दोनों संयमों में अनुष्ठानकृत कोई विशेषता नहीं है।

शंका—तब तो उपदेश की अपेक्षा संयम को भले ही दो प्रकार का कह लिया जावे,पर वास्तव में तो वह एक ही है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह कथन हमें इष्ट ही है और इसी अभिप्राय से सूत्र में स्वतन्त्ररूप से (सामायिक पद के साथ)'शुद्धिसंयत' पद का ग्रहण नहीं किया है।

(षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक १ पृ.–३७० से ३७२)

९६. जिनागम नवनीत
अड़तालीस संस्कारों के नाम

अविद्यासंस्कारनाशकः- अविद्या अज्ञानं तस्याः संस्कार असंसारमभ्यासोऽनुभवनं तस्य नाशकः मूलादुन्मूलकः निर्मूलकाषंकशकः। अथवा अविद्यां अज्ञानं संस्कारैरष्टचत्वारिंशता नाशयतीति अविद्यासंस्कारनाशकः। अथ के ते अष्टाचत्त्वारिंशत् संस्कारा इति चेदुच्यते-१ सद्दर्शनसंस्कारः, २ सम्यग्ज्ञानसंस्कारः, ३ सच्चारित्रसंस्कार, ४ सत्तपःसंस्कारः, ५ वीर्यचतुष्कसंस्कारः ६ अष्टमातृप्रवेशसंस्कारः, ७ अष्टशुद्धि-संस्कारः, ८ परीषहजयसंस्कारः, ९ त्रियोगासंयमच्युतिशीलनसंस्कारः, १० त्रिकरणा-संयमारतिसंस्कारः ११ दशसंयमोपरमसंस्कारः, १२ अक्षनिर्जयसंस्कारः, १३ संज्ञानिग्रहसंस्कारः, १४ दशधर्मधृतिसंस्कारः, १५ अष्टादशशीलसहस्त्रसंस्कारः, १६ चतुरशीतिलक्षगुण-संस्कारः, १७ विशिष्टर्माध्यानसंस्कारः, १८ अतिशयसंस्कारः, १९ अप्रमत्तसंयमसंस्कारः, २० दृढश्रुततजोऽकंप्रकरणश्रेण्यारोहणसंस्कारः, २१ अनन्तगुणशुद्धिसंस्कारः, २२ अप्रवृत्ति-कृतिसंस्कारः, २३ पृथक्त्ववितर्कवीचारध्यान-संस्कारः, २४ अपूर्वकरणसंस्कारः, २५ अनिवृत्ति संस्कार २६ बादरकषायकिट्टिकरणसंस्कारः,२७ सूक्ष्मकषायकिट्टिकरणसंस्कारः २८ बादर-कषायकिट्टिनिर्लेपनसंस्कारः, २९ सूक्ष्मकषाय-किट्टिनिर्लेपनसंस्कारः, ३० सूक्ष्म-कषायचरणसंस्कारः, ३१ प्रक्षीणमोहत्वसंस्कारः, ३२ यथाख्यात-चारित्रसंस्कारः, ३३ एकत्ववितर्कविचारध्यानसंस्कारः, ३४ घातिघातनसंस्कारः, ३५ केवलज्ञान-दर्शनोद्रमसंस्कारः, ३६ तीर्थप्रवर्तनसंस्कारः, ३७ सूक्ष्म-क्रियाध्यान-संस्कारः, ३८ शैलेशीकरणसंस्कारः, ३९ परससंवरवर्तिसंस्कारः, ४० योगकिट्टिकरण-

संस्कारः, ४१ योगकिट्टिनिर्लेपनसंस्कारः, ४२ समुच्छिन्नक्रियासंस्कारः, ४३ परम-निर्जराश्रयणसंस्कारः, ४४ सर्वकर्मक्षयसंस्कारः, ४५ अनादिभवपर्यय-विनाश-संस्कारः, ४६ अनन्तसिद्धत्वादिगतिसंस्कारः, ४७ अदेहसहजज्ञानोपयो-गैश्वर्य-संस्कारः,४८ अदेहसहोत्थक्षयोपयोगैश्वर्यसंस्कारः।

(जिनसहस्त्रनाम संस्कृत टीका, ज्ञानपीठ से प्रकाशित पृ. २४८)

९७. जिनागम नवनीत
जैनशासन के अन्तर्गत नमोऽस्तु शासन है

गुरुपरिवादो सुदवुच्छेदो तित्थस्स मइलणा जडदा।
भिंभलकुसीलपासत्थदा य उस्सारकप्पम्हि।।१५१।।

गुरुपरिवादो—गुरोःपरिवादः परिभवः केनायं निःशीलं लुञ्चितः इति लोकवचनं। **सुदवुच्छेदो**-श्रुतस्य व्युच्छेदो विनाशः स तथा भूतस्तं दृष्ट्वा अन्योऽपि भवति अन्येऽपि कश्चिदपि न गुरुगृहं सेवते ततःश्रुतविनाशः। **तित्थस्स**-तीर्थस्य शासनस्य। मइलण-मलिनत्वं नमोस्तूनां शासने एवंभूताः सर्वेऽपीति मिथ्यादृष्ट्यो वदन्ति। **जडदा**-मूर्खत्वं। भिंभल-विह्वल आकुलः। कुसील-कुशीलः। **पासत्थ**-पार्श्वस्थ एतेषां भावः विह्वलकुशीलपार्श्वस्थता। **उस्सारकप्पम्हि**- उत्सारकल्पे त्याज्यकल्पे गणं त्यक्त्वा एकाकिनो विहरणे इत्यर्थः। मुनिनैकाकिना विहरमाणेनगुरुपरिभवश्रुतव्युच्छेदती-र्थमलिनत्वजडताःकृता भवन्ति तथा विह्वलत्वकुशीलत्वपार्श्वस्थत्वानि कृतानीति।।१५१।।

गाथार्थ—स्वेच्छाचार की प्रवृत्ति में गुरु की निन्दा,श्रुत का विनाश, तीर्थ की मलिनता, मूढ़ता, आकुलता, कुशीलता और पार्श्वस्थता ये दोष आते हैं।।१५१।।

आचारवृत्ति—उत्सार कल्प में गण को छोड़कर एकाकी विहार करने पर उस मुनि के गुरु का तिरस्कार होता है अर्थात् इस शीलशून्य मुनि को किसने मूंड दिया है ऐसा लोग कहने लगते हैं। श्रुत की परम्परा का विच्छेद हो जाता है अर्थात् ऐसे एकाकी अनर्गल साधु को देखकर अन्य मुनि भी ऐसे हो जाते हैं। पुनः कुछ अन्य भी मुनि देखा–देखी अपने गुरुगृह अर्थात् गुरु के संघ में नहीं रहते है तब श्रुत-शास्त्रों के अर्थ को ग्रहण न करने से श्रुत का नाश हो जाता है, तीर्थ का अर्थ शासन है। **जिनेन्द्रदेव के शासन को 'नमोस्तु शासन'** कहते हैं अर्थात् इसी दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में मुनियों को 'नमोस्तु' शब्द से नमस्कार किया जाता है। इस नमोस्तु शासन में सभी मुनि ऐसे ही (स्वच्छन्द) होते हैं ऐसा मिथ्यादृष्टि लोग कहने लगते हैं। तथा उस मुनि में स्वयं मूर्खता, विह्वलता, कुशीलता और पार्श्वस्थरूप दुर्गुण प्रवेश कर जाते हैं।

भावार्थ—यहाँ **''जैनं जयतु शासनं''** जैन शासन जयवन्त हो, जैन शासन की जय हो, इन शब्दों को हटाकर **'नमोऽस्तु शासन'** की जय बोलना या बुलवाना उचित नहीं है, क्योंकि जैनशासन महत्त्वपूर्ण है, मुख्य है, जैनधर्म का पर्यायवाची होने से जैनधर्म की पहचान है, इसके अन्तर्गत नमोऽस्तु शासन है।

आज–कल वर्तमान में अन्य सम्प्रदाय में भी देवी–देवताओं के लिए नमोऽस्तु शब्द का प्रयोग देखा जा रहा है। इसलिए जैनशासन की जगह नमोऽस्तु शासन का प्रयोग करना सर्वथा अनुचित है। (मूलाचार पृ. १२८)

९८. जिनागम नवनीत

देवों के यान-विमान,वस्त्राभरण नित्य व अनित्य भी हैं।

वालुगपुप्फगणामा याणविमाणाणि सक्कजुगलम्मि।
सोमणसं सिरिरुक्खं सणक्कुमारिंददुदयम्मि।।४३८।।

बम्हिंदादिचउक्के याणविमाणाणि सव्वदो भद्दा।
पीदिकरम्मकणामा मणोहरा होंति चत्तारि।।४३९।।

आणदपाणदइंदे लच्छीमादिंतिणामदो होदि।
आरणकप्पिंददुगे याणविमाणं विमलणामं।।४४०।।

सोहम्मादिचउक्के कमसो अवसेसकप्पजुगलेसुं।
होंति हु पुव्वुत्ताइं याणविमाणाणि पत्तेक्कं।।४४१।।

पाठान्तरम्।

एककं जोयणलक्खं पत्तेक्कं दीहवाससंजुत्ता।
याणविमाणा दुविहा विक्किरियाए सहावेणं।।४४२।।

ते वक्किरियाजादा याणविमाणा विणासिणो होंति।
अविणासिणो य णिच्चं सहावजादा परमरम्मा।।४४३।।

धुव्वंतधयवदाया विविहासणसयण पहुदिपरिपुण्णा।
धूवघडेहिं जुत्ता चामरघंटादिकयसोहा।।४४४।।

वंदणमालारम्मा मुत्ताहलहेमदामरमणिज्जा।
सुन्दरदुवारसहिदा वज्जकवाडुज्जला विरायंति।।४४५।।

सच्छाइं भायणाइं वत्थाभरणाइआइं दुविहाइं।
होंति हु याणविमाणे विक्किरियाए सहावेणं।।४४६।।

विक्किरिया जणिदाइं विणासरूवाइं होंति सव्वाइं।
वत्थाभरणादीया सहावजादाणि णिच्चाणिं।।४४७।।

शक्रयुगल (सौधर्म व ईशान इन्द्र) में वालुक और पुष्पक नामक यान विमान तथा सानत्कुमारादि दो इन्द्रों में सौमनस और श्रीवृक्ष नामक यान विमान होते हैं।।४३८।। ब्रह्मेन्द्रादिक चार के सर्वतोभद्र, प्रीतिक (प्रीतिंकर), रम्यक और मनोहर नामक चार यान विमान होते हैं।।४३९।। आनत और प्राणत इन्द्र के लक्ष्मी मादिन्ति (?) नामक यान विमान तथा आरण कल्पेन्द्र युगल में विमल नामक यान विमान होते हैं।।४४०।। सौधर्मादि चार में और शेष कल्पयुगलों में क्रम से प्रत्येक के पूर्वोक्त यान–विमान होते हैं।।४४१।। पाठान्तर।।

इनमें से प्रत्येक विमान एक लाख योजन प्रमाण दीर्घता व व्यास से संयुक्त है। ये विमान दो प्रकार हैं, एक विक्रिया से उत्पन्न हुए और दूसरे स्वभाव से ।।४४२।। विक्रिया से उत्पन्न हुए वे यान–विमान विनश्वर और स्वभाव से उत्पन्न हुए वे परम रम्य यान विमान नित्य व अविनश्वर होते हैं।।४४३।। उक्त यान–विमान फहराती हुई ध्वजा–पताकाओं से सहित, विविध आसन व शय्या आदि से परिपूर्ण, धूपघटों से युक्त,चामर एवं घंटादिक से शोभायमान, वंदनमालाओं से रमणीय, मुक्ताफल व सुवर्ण की मालाओं से सुशोभित, सुन्दर द्वारों से सहित,वज्रमय कपाटों से उज्ज्वल होते हुए विराजमान हैं।।४४४-४४५।। यान–विमान में स्वच्छ भाजन, वस्त्र और आभरणादिक विक्रिया व स्वभाव से दो प्रकार के होते हैं।।४४६।। विक्रिया से उत्पन्न सब वस्त्राभरण विनश्वर और स्वभाव से उत्पन्न हुए ये सभी नित्य होते हैं।।४४७।।

(तिलोयपण्णत्ति अधिकार–७ पृ. ८३१-८३२)

९९. जिनागम नवनीत

श्री ऋषभदेव के चौरासी गणधर के नाम

सेनान्तो वृषभः कुम्भो रथान्तो दृढसंज्ञक।
धनुरन्तः शतो देवशर्मा भवान्तदेवभाक्।।५४।।

नन्दनः सोमदत्ताह्वः सूरदत्तो गुणैर्गुरुः।
वायुशर्मा यशोबाहुर्देवाग्निश्चाग्निदेववाक्।।५५।।

अग्निगुप्तोऽथ मित्राग्निर्हलभृत् समहीधरः।
महेन्द्रो वसुदेवश्च ततः पश्चाद्वसुन्धरः।।५६।।

अचलो मेरुसंज्ञश्च ततो मेरूधनाह्वयः।
मेरुभूतिर्यशोयज्ञप्रान्तसर्वाभिधानकौ।।५७।।

सर्वगुप्तःप्रियप्रान्तसर्वो देवान्तसर्ववाक्।
सर्वादिविजयो गुप्तो विजयादिस्ततः परः।।५८।।

विजयमित्रो विजयिलोऽपराजितसंज्ञकः।
वसुमित्रःसविश्वादिसेनः सेनान्तसाधुवाक्।।५९।।

देवान्तसत्यः सत्यान्तदेवो गुप्तान्तसत्यवाक्।
सत्यमित्रः सतां ज्येष्ठःसंमितो निर्मलो गुणैः।। ६०।।

विनीतः संवरो गुप्तो मुन्यादिर्मुनिदत्तवाक्।
मुनियज्ञो मुनिर्देवप्रान्तो यज्ञान्तगुप्तवाक्।।६१।।

मित्रयज्ञःस्वयम्भूश्च देवदत्तान्तगौ भगौ।
भगादिफल्गुः फल्गवन्तगुप्तो मित्रादिफल्गुकः।। ६२।।

प्रजापतिः सर्वसन्धो वरुणो धनपालकः।
मघवान् राश्यन्ततेजो महावीरो महारथः।।६३।।

विशलाक्षो महाबालः शुचिसालस्ततःपरः।
वज्रश्च वज्रसारश्च चन्द्रचूलसमाह्वयः।।६४।।

जयो महारसःकच्छमहाकच्छावतुच्छकौ।
नमिर्विनमिरन्यौ च बलातिबलसंज्ञकौ।।६५।।

बलान्तभद्रो नन्दी च महाभागी परस्ततः।
मित्रान्तनन्दी देवान्तकामोऽनुपमलक्षणः।।६६।।

चतुर्भिरधिकाशीतिरिति स्त्रष्टुर्गणाधिपाः।
एते सप्तर्द्धिसंयुक्ताः सर्वे वेद्यनुवादिनः।।६७।।

वृषभसेन १, कुम्भ २, दृढ़रथ ३, शतधनु ४, देवशर्मा ५, देवभाव ६, नन्दन ७, सोमदत्त ८, गुणों से श्रेष्ठ सूरदत्त ९, वायुशर्मा १०, यशोबाहु ११, देवाग्नि १२, अग्निदेव १३, अग्निगुप्त १४, मित्राग्नि १५, हलभृत् १६, प्रसिद्ध महीधर १७, महेन्द्र १८, वसुदेव १९, उसके अनन्तर वसुन्धर २०, अचल २१, मेरु २२, तदनन्तर मेरुधन २३, मेरुभूति २४, सर्वयश २५, सर्वयज्ञ २६, सर्वगुप्त २७, सर्वप्रिय २८, सर्वदेव २९, सर्वविजय ३०, विजयगुप्त ३१, फिर विजयमित्र ३२, विजयिल ३३, अपराजित ३४, वसुमित्र ३५, प्रसिद्ध विश्वेसन ३६, साधुसेन ३७, सत्यदेव ३८, देवसत्य ३९, सत्यगुप्त ४०, सत्पुरुषों में श्रेष्ठ सत्यमित्र ४१, गुणों से युक्त निर्मल ४२, विनीत ४३, संवर ४४,

मुनिगुप्त ४५, मुनिदत्त ४६, मुनियज्ञ ४७, मुनिदेव ४८, गुप्तयज्ञ ४९, मित्रयज्ञ ५०, स्वयंभू ५१, भगदेव ५२, भगदत्त ५३, भगफल्गु ५४, गुप्तफल्गु ५५, मित्रफल्गु ५६, प्रजापित ५७, सर्वसंघ ५८, वरुण ५९, धनपालक ६०, मघवान् ६१, तेजोराशि ६२, महावीर ६३, महारथ ६४, विशालाक्ष ६५, महाबाल ६६, शुचिशाल ६७, फिर वज्र ६८, वज्रसार ६९, चन्द्रचूल ७०, जय ७१, महारस ७२, अतिशय श्रेष्ठ कच्छ ७३, महाकच्छ ७४, नमि ७५, विनमि ७६, बल ७७, अतिबल ७८, भद्रबल ७९, नन्दी ८०, फिर महाभागी ८१, नन्दिमित्र ८२, कामदेव ८३ और अनुपम ८४। इस प्रकार भगवान वृषभदेव के ये ८४ गणधर थे, ये सभी सातों ऋद्धियों से सहित थे और सर्वज्ञ देव के अनुरूप थे।। ५४ से ६७ तक।।

(आदिपुराण पर्व–४३ फृ. ३५६, ३५७)

१००. जिनागम नवनीत
सभी समुद्रों के जल का स्वाद अपने नाम के अनुरूप है।

स्वस्वनामरसास्वादा लवणो वारुणीवरः।
वार्द्धी क्षीरघृतवरौ चत्वार इति कीर्त्तिताः।।२७।।

अर्थ—(लवणः) लवण (वारुणीवरः) वारुणीवर (क्षीरघृतवरौ) क्षीरवर और घृतवर (वार्द्धी) समुद्र (इति), इस प्रकार (चत्वारः) चार समुद्र (स्वस्वनामरसास्वादाः) अपने नाम रस स्वाद वाले (कीर्त्तिताः) कहे गये हैं।

भावार्थ—लवणसमुद्र, वारुणीवर समुद्र, क्षीरसमुद्र और घृतवर समुद्र अपने नाम के अनुसार स्वाद वाले हैं। अर्थात् लवण समुद्र के जल का स्वाद लवण के समान है। वारुणी का वारुणी के, घृतवर का घृत के समान और क्षीरवर का क्षीर के समान रस स्वाद है।।२७।।

कालोदकपुष्करवरस्वयंभूरमणार्णवाः।
जलास्वादास्त्रयः क्षौद्ररसाः शेषास्तु सागराः।।२८।।

अर्थ—(कालोदकपुष्करवरस्वयंभूरमणार्णवाः) कालोदधि समुद्र, पुष्करवर समुद्र, स्वयंभूरमण समुद्र, (त्रयः) तीन (जलस्वादाः) जल स्वाद हैं (तु) और (शेषाः) शेष (सागराः) समुद्र (क्षौद्ररसाः) क्षौद्र रस वाले हैं।

भावार्थ—कालोदधि समुद्र, पुष्करवर समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्र यह तीनों समुद्र जल स्वाद वाले हैं और शेष समुद्र क्षौद्र रस वाले हैं।।२८।।

(आचारसार पृ. २४३)

१०१. जिनागम नवनीत

स्वयंप्रभ पर्वत के बाहर कर्मभूमि है एवं स्वयंप्रभ पर्वत से पूर्व असंख्यात द्वीपों में जघन्य भोगभूमियाँ हैं।

स्वयंभूरमणद्वीपमध्यस्थाद्वलयाकृते।
स्वयंप्रभाचलात्सर्वा कर्मभूमिर्बहिः स्थिताः।।३०।।

अर्थ—(वलयाकृते) वलयाकृति (स्वयंभूरमणद्वीपमध्यस्यात्) स्वयंभूरमण द्वीप के मध्यस्थ (स्वयंप्रभाचलात्) स्वयंप्रभ अचल से (बहि.) बाहर (सर्वा) सब (कर्मभूमिः) कर्मभूमि (स्थिताः) स्थित हैं।

भावार्थ—स्वयंभूरमण द्वीप के मध्यस्थ वलयाकृति स्वयंप्रभ पर्वत से बाहर कर्मभूमि स्थित है।

स्वयंप्रभाचलादारात्परतो मानुषोत्तरात्।
मध्याभूरन्तरद्वीपा जघन्या भोगभूमयः।।३१।।

अर्थ—(मानुषोत्तरात्) मानुषोत्तर पर्वत से (परतः) आगे (स्वयंप्रभाचलात्) स्वयंप्रभाचल से (आरात्) पूर्व (मध्याभूः) मध्य भूमियों के (अन्तरद्वीपाः) अन्तर द्वीपों में (जघन्या) जघन्य (भोगभूमयः) भोगभूमियां हैं।

भावार्थ—मानुषोत्तर पर्वत से लेकर स्वयंप्रभ पर्वत तक मध्य के असंख्यात द्वीप, समुद्र में जघन्य भोगभूमियां पाई जाती हैं।।३१।।

(आचारसार, पृ. २४३)

१०२. जिनागम नवनीत

पंचामृत अभिषेक के प्रमाण

(१)

कलस चउक्कं ठाविय चउसु वि कोणेसु णीरपरिपुण्णं।
घयदुद्धदहियभरियं णवसयदलछण्णमुहकमलं।।
कलश चतुष्कं स्थापयित्वा चतुर्ष्वपि कोणेषु नीरपरिपूर्णं।
घृतदुग्धदधिभृतं नवशतदलच्छन्नमुखकमलं।।४३८।।

संक्षिप्त अर्थ—तदनंतर चारों कोनों में जल से भरे हुए चार कलश स्थापन करने चाहिए तथा मध्य में पूर्ण कलश स्थापन करना चाहिए। इनके अतिरिक्त घी, दूध, दही इनसे भरे हुए कलश भी स्थापन करने चाहिए। इन सब कलशों के मुख पर नवीन सौ दल वाले कमल रखने चाहिए।

(२)

उच्चरिऊण मंते अहिसेयं कुणउ देवदेवस्स।
णीरघयखीरदहियं खिवउ अणुक्कमेण जिणसीसे।।
उच्चार्य मंत्रान् अभिषेकं कुर्यात् देवदेवस्य।
नीरघृतक्षीरदधिकं क्षिपेत् अनुक्रमेण जिनशीर्षे।।४४१।।

तदनंतर देवाधिदेव भगवान अरहंत देव का अभिषेक करना चाहिए। वह अभिषेक अनुक्रम से जल, घी, दूध, दही आदि पदार्थों से मंत्रों का उच्चारण करते हुये भगवान के मस्तक पर से करना चाहिए।

(३)

ण्हवणं काऊण पुणो अमलं गंधोवयं च वंदित्ता।
सवलहणं च जिणिंदे कुणऊ कस्सीरमलएहिं।।
स्नपनं कारयित्वा पुनः अमलं गन्धोदकं च वन्दित्वा।
उद्वर्तनं च जिनेन्द्रे कुर्यात् काश्मीरमलयैः।।४४२।।

अर्थ—इस प्रकार अभिषेक कर निर्मल गंधोदक की वंदना करनी चाहिए फिर काश्मीरी केसर तथा चंदन आदि से भगवान का उद्वर्तन करना चाहिए। अभिषेक के अनंतर चन्दन, केसर आदि द्रव्यों की सर्वौषधि बनाकर उससे प्रतिमा का उबटन करना चाहिए। फिर कोण कलशों से तथा पूर्ण कलश से अभिषेक करना चाहिए। यह विधि अत्यंत संक्षेप से कही है। इसकी पूर्ण विधि अभिषेक पाठ से जान लेनी चाहिए।

(४)

घृतक्षीरादिभिः पूर्णाः कलशाः कमलाननाः।
मुक्तादामादिसत्कंठा रत्नरश्मिविराजिताः।।१४।।
जिनबिम्बाभिषेकार्थ-माहूता भक्तिभासुराः।
दृश्यंते भोगिगेहेषु शतशोऽथ सहस्त्रशः।।१५।।

अर्थ—जो घी, दूध आदि से भरे हुए थे, जिनके मुख पर कमल ढके हुए थे, जिनके कण्ठ में मोतियों की मालाएँ लटक रही थी, जो रत्नों की किरणों से सुशोभित थे, जो नाना प्रकार के बेल-बूटों से देदीप्यमान थे तथा जो जिन-प्रतिमाओं के अभिषेक के लिए इकट्ठे किये गये थे, ऐसे सैकड़ों हजारों कलश गृहस्थों के घरों में दिखाई देते थे।

भावार्थ—लंका में स्थित शांतिनाथ चैत्यालय में भक्तिमान लंका के लोग घृत, दुग्ध, दधि आदि से भरे हुए कलश जिनके कि कंठ भाग मोतियों की माला से सुशोभित हो रहे हैं, जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के लिए लाये।

(पद्मपुराण सर्ग-६८)

१०३. जिनागम नवनीत

चंदन लेपन के प्रमाण

(१)

श्री चन्दनं विनानैव, पूजां कुर्यात्कदाचन।
प्रभाते घनसारस्य, पूजा कार्या विचक्षणैः।।१२५।।

अर्थ—श्री जिनेन्द्र देव की पूजा बिना चन्दन के कभी नहीं करनी चाहिए। चतुर पुरुषों को प्रातः काल के समय चन्दन से पूजा अवश्य करनी चाहिए।

भावार्थ—प्रातः काल में भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा उनके चरणारविंद के अंगुष्ट पर चन्दन लगाकर करनी चाहिए। यद्यपि भगवान की पूजा अष्टद्रव्य से की जाती है और वह अभिषेक पूर्वक ही होती है तथापि अभिषेक के बाद चरणों पर चंदन लगाना आवश्यक माना जाता है। यदि अष्टद्रव्य का समागम न मिले तो केवल भगवान के चरण के अंगूठे पर चंदन लगाने से ही भगवान की पूजा समझी जाती है। यदि भगवान के चरणों पर चंदन न लगाया जाये और बिना चंदन लगाये ही पूजा की जाती है तो वह पूर्ण पूजा नहीं समझी जाती, प्रातःकाल के समय चंदन पूजा ही मुख्य मानी गई है।

(उमास्वामी श्रावकाचार पृ. ४७)

(२)

चंदणसुअन्धलेओ, जिणवर-चरणेसु जो कुणई भविओ।
लहइ तणू विक्किरियं, सहावसुयंधयं अमलं।।
चन्दनसुगंधलेपं, जिनवरचरणेषु यः करोति भव्यः।
लभते तनुं वैक्रियिकं, स्वभावसुगन्धकं अमलं।।४७१।।

अर्थ—जो भव्य पुरुष भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों पर (जिन प्रतिमा के चरण कमलों पर) सुगंधित चन्दन का लेप करता है उसको स्वर्ग में जाकर अत्यन्त निर्मल और स्वभाव से ही सुगंधित वैक्रियक शरीर प्राप्त होता है।

भावार्थ—चन्दन से पूजा करने वाला भव्य जीव स्वर्ग में जाकर उत्तम देव होता है।

(भावसंग्रह पृ. १०२)

१०४. जिनागम नवनीत

पुष्प चढ़ाने के प्रमाण

अलि-चुंबिएहिं पुज्जइ, जिणपयकमलं च जाइमल्लीहिं।
सो हवइ सुरवरिंदो, रमेई सुरतरुवरवणेहिं।।
अलि-चुम्बितैः पूजयति, जिनपद-कमलं च जातिमल्लिकैः।
स भवति सुरवरेन्द्रः, रमते सुरतरुवरवनेषु।।४७३।।

अर्थ—जो भव्य पुरुष भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की जिन पर भ्रमर घूम रहे हैं ऐसे चमेली, मोगरा आदि उत्तम पुष्पों से पूजा करता है वह स्वर्ग में जाकर अनेक देवों का इन्द्र होता है और वह वहाँ पर चिरकाल तक स्वर्ग में होने वाले कल्पवृक्षों के वनों में (बगीचों में) क्रीड़ा किया करता है।

(भावसंग्रह पृ. १०२)

१०५. जिनागम नवनीत

सचित्त पूजा निर्दोष है

माल्यगंधप्रधूपाद्यैः, सचित्तैः कोऽर्चयेज्जिनम्।
सावद्यसंभवं वक्ति यः, स एवं प्रबोध्यते।।१४०।।
जिनार्चानेकजन्मोत्थं, किल्विषं हंति यत्कृतम्।
सा किंचिद् यजनाचारभवं सावद्यमंगिनाम्।।१४१।।

अर्थ—कोई कोई लोग यह कहते हैं कि पुष्पमाला, धूप, दीप, जल, फल आदि सचित्त पदार्थों से भगवान की पूजा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सचित्त पदार्थों से पूजा करने में सावद्य जन्य पाप (सचित्त के आरंभ से उत्पन्न हुआ पाप) उत्पन्न होता है। उनके लिए आचार्य समझाते हैं कि भगवान की पूजा करने से अनेक जन्मों के पाप नष्ट

हो जाते हैं फिर क्या उसी पूजा से उसी पूजा में होने वाला आंरभ जनित वा सचित्तजन्य थोड़ा सा पाप नष्ट नहीं होगा ? अवश्य होगा।

(उमास्वामी श्रावकाचार पृ. ५५)

१०६. जिनागम नवनीत

स्त्रियों के द्वारा जिनाभिषेक के प्रमाण

(१)

अत्यंतसुकुमारस्य, जिनस्य सुरयोषितः।
शच्याद्याः पल्लवस्पर्श-सुकुमारकरास्ततः।।१७२।।
दिव्यामोदसमाकृष्टषट्पदौघानुलेपनैः ।
उद्वर्तयन्त्यस्ताः प्रापुः, शिशुस्पर्शसुखं नवम्।।१७३।।
ततो गंधोदकैः कुंभैरभिषिंचन् जगत्प्रभुं।
पयोधरभरानम्रास्ता वर्षा इव भूभृतं।।१७४।।

शचि आदि देवियों ने अत्यंत सुकुमार जिनबालक के शरीर पर दिव्य सुगंधित चंदन विलेपन करके शिशु के स्पर्श के नूतन सुख का अनुभव किया। पुनः सुगंधित जल से भरे हुये कलशों से जगत के प्रभु का अभिषेक किया।

(हरिवंशपुराण सर्ग ८ पृ. १५९)

(२)

गृहीतगंध-पुष्पादि-प्रार्चनाः सपरिच्छदा।
अथैकदा जगामैषा, प्रातरेव जिनालयम्।।५५।।
त्रिःपरीत्य ततः स्तुत्वा, जिनांश्च चतुराशया।
संस्नाप्य पूजयित्वा च, प्रयाता यति संसदि।।५६।।

वह कन्या सपरिवार गंध, पुष्प आदि पूजन सामग्री लेकर प्रातः ही जिनमंदिर में पहुंची। वहां पर तीन प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करके और उनकी पूजा करके यतियों की सभा में पहुंचती है।

(जिनदत्त चारित्र– गुणभद्राचार्य कृत)

(३)

अथैकदा सुता सा च सुधीः मदनसुंदरी।
कृत्वा पंचामृतैः स्नानं, जिनानां सुखकोटिदम्।।

एक समय विदुषीमदन सुंदरी ने करोड़ों सुखों को देने वाला ऐसा जिनेन्द्रदेव का पंचामृतों से अभिषेक किया।

(श्रीपालचरित बृहन्नेमिचन्द्रकृत)

(४)

तदा वृषभसेना च प्राप्य राज्ञीपदं महत्।
दिव्यान् भोगान् प्रभुंजाना, पूर्वपुण्यप्रसादतः।।३८।।
पूजयंती जगत्पूज्यान्, जिनान् स्वर्गापवर्गदान्।
दिव्यैरष्टमहाद्रव्यैः, स्नपनादिभिरुज्ज्वलैः।।३९।।

तब वृषभसेना सम्राज्ञीपद को प्राप्त कर पूर्व पुण्य से दिव्य भोगों को भोगती हुयी जगत्पूज्य जिनप्रतिमाओं की अभिषेकपूर्वक पूजा करती थी।

(आराधना कथा कोष भाग–३ पृ. ४२)

१०७. जिनागम नवनीत

जनेऊ धारण के प्रमाण

यज्ञोपवीत धारण करके ही भगवान के अभिषेक व पूजा का विधान है। यथा—

श्री पूज्यपादस्वामीकृत अभिषेक पाठ से—

ब्रह्मस्थानमिदं दिशावलयमप्येतन्पवित्रांकुशै-
रर्हद्ब्रह्ममहामहाध्वरविधिप्रत्यूहविध्वंसिभिः।
जैनब्रह्मजनैकभूषणमिदं यज्ञोपवीतं मया
विभ्राणेन महेन्द्रविभ्रमकरं संघार्यते मण्डनम्।।५।।

(अभिषेक पाठ संग्रह पृ)

श्री गुणभद्राचार्य कृत अभिषेक पाठ से—

ॐ मतिनिर्मलमुक्ताफललंलितं यज्ञोपवीतमतिपूतम्।
रत्नत्रयमिति मत्वा करोमि कलुषापहरणमाभरणम्।।१५।।

(अभिषेक पाठ संग्रह पृ. १७)

अन्य अभिषेक पाठ—

अतिनिर्मलमुक्ताफललंलितं यज्ञोपवीतमतिपूतम्।
रत्नत्रयमिति मत्वा करोमि कलुषापहरणमाभरणम्।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः स्वाहा।

१०८. जिनागम नवनीत
शासन देव-देवी आदि के प्रमाण

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया, देवता शांतिहेतवे।
क्रूरास्तु देवताः हेया, येषां स्याद्वृत्तिरामिषैः।।

अर्थ– जिनागम में विश्वेश्वर, चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि देवता शांति के लिए बतलाये हैं। परन्तु जिन पर बलि चढ़ाई जाती है, जीव मारकर चढ़ाये जाते हैं ऐसे चंडी, मुंडी आदि देवता त्याग करने योग्य हैं। इसका भी खुलासा इस प्रकार है।

मिथ्यात्वपूरिताः क्रूराः, सशस्त्राः सपरिग्रहाः।
निंद्या आमिषवृत्तित्वान्मद्यपानाच्च हीनकाः।।1।।

कुदेवाश्च ता ज्ञेया ब्रह्मोमाविष्णुकादयः।
प्रतिपत्तिश्च तासां हि, मिथ्यात्वस्य च कारणम्।।2।।

तस्माद्धेयाः कुदेवास्ते, मिथ्याभेषधरावहाः।
ग्राह्याः सम्यक्त्वसम्पन्ना, जिनधर्मप्रभावकाः।।3।।

चक्रेश्वर्यादिदिक्पाला, यक्षाश्च शांतिहेतवे।
सम्यग्दर्शनयुक्तत्वात्ते पूज्या जिनशासने।।4।।

जो देव मिथ्यात्वी क्रूर-हिंसक हैं, शस्त्र, परिग्रह सहित हैं, माँस की, मद्य की वृत्ति होने से निंद्य हैं ऐसे देवता हीन हैं अतः ये हेय हैं इनसे अतिरिक्त सम्यक्त्व से संपन्न जिनशासन की प्रभावना करने वाले देवता ग्राह्य हैं– मान्य है। ऐसे चक्रेश्वरी आदि शासनदेवी-देवता, दिक्पाल, क्षेत्रपाल आदि तथा यक्ष आदि देवता शांति के लिए हैं। ये सम्यक्त्वी होने से जिनशासन में पूज्य माने गये हैं।

(उमास्वामी श्रावकाचार पृ. 29 पर मंत्र प्रदीप के श्लोक))

प्रशस्ति

–शंभु छंद–

श्री शांतिनाथ श्री कुंथुनाथ, श्री अर जिनवर को नित्य नमूँ।
श्री ऋषभदेव से महावीर तक, चौबिस जिनवर को प्रणमूँ।।
श्री सरस्वती माँ को वंदूं, श्री गौतमगणधर को प्रणमूँ।
आचार्य उपाध्याय साधु परम-गुरुओं को पुनः पुनः प्रणमूँ।।१।।

श्री मूलसंघ में कुंदकुंद आम्नाय, सरस्वति गच्छ कहा।
विख्यात बलात्कारगण से, गुरु परम्परा से मान्य रहा।।
इसमें अगणित आचार्य हुए, इन सबको वंदन मेरा है।
सब परम्परा सूरी-मुनि को, नितप्रति अभिनंदन मेरा है।।२।।

बीसवीं सदी में प्रथम सूरि, चारित्रचक्रवर्ती गुरुवर।
श्री शांतिसागराचार्य हुए, उन पट्टाचार्य वीरसागर।।
इनसे महाव्रत दीक्षा लेकर, मैं नाम 'ज्ञानमति' प्राप्त किया।
जिनदेव शास्त्र गुरु की भक्ती से ज्ञानामृत का लाभ लिया।।३।।

वीराब्द पच्चीस शतक चालिस, वैशाख शुक्ल तृतिया तिथि में।
जिन आगम से नवनीत लिया, संकलित किया इसको मैंने।।
यह जिन आगम नवनीत ग्रंथ, सब भव्यों को हितकारी है।
बहुतेक ग्रंथ का सार भरा यह ग्रंथ बना सुखकारी है।।४।।

यह ग्रंथ सदा ही इस भू पर, सबको ज्ञानामृत देवेगा।
जब तक जग में रवि, शशि तब तक, भव्यों को अमृत देवेगा।।
यह जिन आगम के सारों में, भी सार सौख्यकारी होवे।
यह सर्व अमंगल दोष हरे, कैवल्य 'ज्ञानमति' कर देवे।।५।।